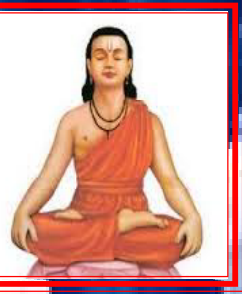


द्व परमार्थ



और

दांभिकता



डॉ. कृष्ण माधव घटाटे

! स्तुति सुमनानि



* प्रज्ञाचक्षु श्रीगुलाबरावमहाराज
समन्वय विचार सारे जगत का बंधु
करणे में समर्थ है ।
...परम पूजनीय गुरुजी गोटे



* श्रीमहाराजजीने इतना स
सटीक ज्ञान प्रकट किया है की -
सागर भर दिया है.

...भारताचे
श्रीअटल

(वि.



* महाराज का सर्व धर्म समन
देखकर उनको समन्वयमहर्षि
उचित है ।

-मा. दत्तोप

भारतीय मजदूर संघके संस्थापक. (तेर



* श्रीगुलाबरावमहाराज की विज्ञ
ऐसा कहना उचित नहीं ।
महाराजकी विज्ञानको प्रदान
अध्यात्मदृष्टि, - ऐसा कहना चा

डॉ. विजय

- पद्मश्री, पद्मभूषण संगण

(महाराजकी विज्ञानदृष्ट

* श्रीगुलाबराव महाराज के सारे ग्रंथ सभी भाषामें अनुवादित होकर विश्वके सामने आने चाहिए ।

महाराज का वैचारिक योगदान उन विषयके तज्ञ व्यक्तियोंके सामने प्रस्तुत हो, ऐसा प्रयत्न आप करें, यहीं सदिच्छा !

-पंतप्रधान श्री मोरारजी देसाई.

(दि. २०/९/१९७८)

* श्रीगुलाबरावमहाराज कौनसेभी विशेषणमें न बैठनेवाले,

विश्वनें कभीभी न देखें हुए, ऐसे अद्भुत रोमहर्षणं व्यक्तिविशेष है ।

वह सारे जगत को वंदनीय होंगे ! और विश्वगुरु होंगे, यह निश्चित है !!!

-पू. स्वामी गोविंद देव गिरी

(श्रीकिशोरजीव्यास)

* विदर्भ में एक छोटेसे

माधानग्राम में रहनेवाले,

शिक्षण संस्कार से दूर, चर्मचक्षु से विहीन

एक किशोर बालक,

जागतिक किर्तीके डार्विन-स्पेन्सर जैसे

बड़े शास्त्रज्ञकों और तत्वज्ञोंकों

आवाहन देता है,

उनके विचारोंको गलत सिद्ध करता है,

उनका अकाट्य तर्कसे खंडन करता है,

यह कितना बड़ा आश्चर्य !

-प्रा. श्री रामभाऊ शेवाळकर

(विदर्भके मान्यवर साहित्यिक)



* महाराज ने केवल ३४ वर्ष की सिर पर किताबोंकी पेटी लेकर, ग्रामग्राम पैदल चलकर, जो कष्ट समाजको जागृत करने के वह अपूर्व है ।

यह उनका कष्टरूप कर्मयोग है ।

साधमें भक्तियोग भी है ।

देशहितार्थ कार्य करनेवाले प्रत्येक

महाराज के विचारसागर से,

स्वयंको उचित उपदेश स्विकार कर

समाजका प्रबोधन करना चाहिए ।

भारत के अनमोल विचारवैभव का द

के द्वारा देखने को मिलता है ।

कठोर कर्मयोग तथा उत्कट भा

समुचित आदर्श समाज के साम

असाधारण उदाहरण है ।

-सरसंघचालक श्रीमोहन



समन्वयमहर्षि
श्रीगुलाबरावमहाराज प्रतिपादित



द्र परमार्थ और दांभिकता

ढोंगबाजी के प्रकार

(पत्र १ ते ४)

आशीर्वाद :

श्रीज्ञानेश्वर मधुराड्डैत सांप्रदायिक मंडळ,
दहिसात, अमरावती विदर्भ.



डॉ. कृ.मा.घटाटे

संपर्क :

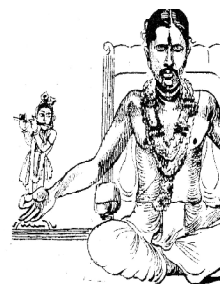
श्रीरंग घटाटे, गोकुळ बंगला, सीव्हिल लाईन नागपूर.
फोन नं. ०७१२२५३३९९७, मो. नं. ९३७२५२९७७०

प्रसाद-भेट

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका	२
शुद्ध परमार्थ और दांभिकता	३
परमार्थ के यात्री	५
चमत्कार	८
पागल और साधु	१२
भोंदू का शब्दचित्र	१५
संप्रदायसुरतररू	२१
गुरु को पत्नी अर्पित करना	२२
पाखंडी गुरु की पहचान	२३
प्रश्नकदंब	२३
गुरु-शिष्य : आपसी बंधन	२६
गुरु किसे बनाया जाय ?	२७
तीन प्रकार की दोष दृष्टि	२८
गुरुप्राप्ति के लिए प्रयत्न	३०
योग में गुरुदर्शन की कसौटी	३२
गुरुभक्ति	३३
गुरु-शिष्य की समानता	३५
व एकरूपता	३६
उपसंहार	३६
परिशिष्ट	
साधुबोध के प्रश्नोत्तर	३७
संदर्भ	४०
ढोंगबाजी के २४ प्रकार	
पत्र १	४२
ढोंग से छूटने के चार मार्ग	४७

वंचक संन्यासी
पत्र २
प्रवंचक साधु /
प्रवंचक लोग
प्रीति से कपट -
विषाद की निर्मिति
ढोंगी का आत्मसम
पत्र ३
नये योगाभ्यासी
ठगबाजी तथा नीति
पत्र ४
निष्ठा की कमी
ठगने की परंपरा
पाश्चात्य नीतिशा
तथा ईश्वर
अभ्यास कैसे करें



शुद्ध परमार्थ और दांभिकता

प्राचीन तत्त्वज्ञान और पाश्चात्य तत्त्वज्ञान इनमें मूलभूत अंतर यह है कि प्राचीन तत्त्वज्ञान में विचार के बाद अनुभूति का महत्त्व है, जबकि पाश्चात्य तत्त्वज्ञान में विचारों से परे जाते ही नहीं। पाश्चात्य तत्त्वज्ञान का जड़ वस्तु के परीक्षण से होता है, जबकि भारतीय तत्त्वज्ञान 'ज्ञान' इस चेतन वस्तु के प्रति जिज्ञासा भाव से निर्मित है। 'ज्ञेय' पदार्थ का निरीक्षण करते हैं, तो वेदांत में 'ज्ञाता' का अस्तित्व के बाद आत्मानात्मविवेक किया जाता है। अतः प्राचीन तत्त्वज्ञान फिजिक्स, केमिस्ट्री आदि भौतिक विज्ञान की शाखाओं तक जाते हैं, तो भारतीय तत्त्वज्ञान, इंद्रिय, मन, आंतरिक पदार्थों का निरीक्षण करते-करते आत्मज्ञान जाते हैं। किन्तु भौतिक सिद्धांत जिस तरह से प्रयोगशाला के बाह्य द्वारा पड़ताले जा सकते हैं, उस तरह से पारमार्थिक सिद्धांत का परख और अंतर होने के कारण बाहरी उपकरणों से उनकी परख नहीं की जा सकती।

अनुभूतिप्रधान तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में सच्चे सत्पुरुषों ने चमत्कार के लिए अनेक अनुभूति मार्ग प्रस्थापित किए हैं। ज्ञानमार्ग, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग प्रमुख हैं। हरेक में आत्मतत्त्व के लिए अनेक प्रक्रियाओं को बतलाया है। उनमें से किसी मार्ग का आधार लेकर आत्मानुभव को पाना होता है। किन्तु मार्ग की योग्यता के अनुरूप उसे कौनसी प्रक्रिया को स्वीकारना है। इसका मार्गदर्शन अनुभव प्राप्त व्यक्ति के सिवाय अर्थात् मार्ग को कोई नहीं कर पाएगा। अतः अनुभवी सत्पुरुषों में से मार्ग चुनना ही साधक के लिए उचित मार्ग है। इसमें

महत्त्वपूर्ण बाधा यह है कि कौन कैसे जान सकेगा, कि वह मार्ग पानी में हैं। उसकी ख्याति इसका आधार नहीं बन सकती। परीक्षा के बाह्य निकष तय नहीं हैं। इस कारण धोरे संभावना अधिक हो गई है। पारमार्थिक अनुभूति तो सब होती है, किन्तु अनुभूति के शरीर पर दिखलाई देने वाले व्यक्ति में उसके अनुरूप रहते हैं। प्रयोगशाला में परीक्षण व्यक्ति के शरीर पर हुए परिणामों की परीक्षा होगी, उसकी परीक्षा बाह्य उपकरणों द्वारा संभव ही नहीं। यही रुकावट है। और इसी का लाभ उठाकर स्वार्थी लोग परमार्थ कर रहे हैं।

किन्तु जिसे आत्मप्राप्ति की इच्छा है, उसे प्राचीन मार्ग का अध्ययन करके सही-झूठ का निर्णय लेना चाहिए। पर निष्ठा रखकर उनके मार्गदर्शन के अनुसार परमार्थमार्ग होना श्रेयस्कर है। किन्तु प्राचीन ग्रंथों का अभ्यास संस्कृत के कारण नहीं हो सकता। और प्राकृत में लिखे सरल शब्दों की ओर साधक कहलाने वाले ध्यान नहीं दे पाते। परिणाम है कि, ऐरा-गैरा उठकर स्वयं को अवतार कहने लगता है। की चालू मुद्रा का उपयोग करके दूसरों को परमार्थ बतलाव चरितार्थ चलाता है। और सामान्य लोग मनःशांति पाने से चमत्कारों की ओर दौड़ने लगते हैं, और ठगे जाते चमत्कारिक परिस्थितियों में महाराज का मार्गदर्शन दूध का पानी का पानी के समान सिखलाने वाला है।

१) शास्त्रप्रत्यय, २) गुरुप्रत्यय ३) आत्मप्रत्यय

वेदांत में शास्त्रप्रचीति, गुरुप्रचीति और आत्मप्रचीति में परस्पर एकतानता होना आवश्यक है, इसलिए गुरु के

ध्यात्म शास्त्र के अभ्यास की भी आवश्यकता है। किन्तु बात है, कि शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया जाता। और प्रयत्न किया जाता है। यही सब समझते हैं। और गुरु मान लेते हैं। और ठगा जाने पर दुःखी होते हैं। गीता है कि, हजारों लोगों में कोई एक परमार्थ की ओर जाने करता है, उन हजारों में एक ही ईश्वर को प्राप्त करता है। ठगा जाता है उनमें स्वानुभूति का अंश नहीं होता, ठगाई होती हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। किन्तु एक साथ जाने पर गलत मार्ग पर चलने की अपेक्षा चींटी की गति से हो, अंत तक चलने वाला मार्ग ही भला है। इस दृष्टि से महाराज द्वारा बताए गए पाखंडियों के बर्ताव का विश्लेषण लिए उपयुक्त साबित होगा। उसका सर्वसामान्य लोग कर पाएँगे, यह कहना कठिन है। किन्तु महाराज का स के लिए कितना उपयोगी है, यह अंत तक अर्थात् होने तक भूला नहीं जा सकेगा।

अर्थ मार्ग के यात्री

अर्थ के मार्ग पर तीन प्रकार के यात्री होते हैं- आर्त, और मुमुक्षु। आमतौर पर जो देवी-देवताओं की पूजा करते मंगते हैं, इन सभी को परमार्थी कहने का चलन है। किन्तु ग आर्त और अर्थार्थी ही कहलाते हैं। सच्चे मुमुक्षु उनमें जाते। सच देखा जाए तो वैराग्यसंपन्न मुमुक्षु ही परमार्थ का थक है। फिर भी आधुनिक विचारक के अनुसार साधक न तीन प्रकार के लोगों का यहाँ हम अध्ययन करेंगे।

आर्त- संसार के दुखों से पीड़ित होकर दुख भूलने के लिए स्वास्थ्य पाने के लिए अनेक लोग देवी-देवताओं से और

साधु पुरुषों की ओर दौड़ लगाते हैं। उन्हें शारीरिक व्याधि मानसिक दुःखों से त्वरित मुक्ति की चाह होती है। आपत्ति उनमें आर्तभाव निर्माण होता है। उन्हें केवल दुःख निवारण कामना होती है। सही परमार्थ की चाह नहीं होती। अतः भक्त कहा गया है।

२. अर्थार्थी- सारी कोशिशों के बावजूद भी जब धन पुत्रकामना या नाना प्रकार की सांसारिक कामनाएँ पूरी न होने कारण कुछ लोग निराश हो जाते हैं। आखरी प्रयत्न जान देवताओं की मन्नत माँगते हैं, या साधु-संतों की सेवा करने उन्हें संसार में भोग की लालसा होती है, वैराग्य भाव न अतः उन्हें सच्चे परमार्थ की भी इच्छा नहीं रहती। ये कहलाते हैं।

येर बहुत जोड़ती किरीटी। जयांची भजने भोगासाठी।

जे आशा तिमिरे दिठी। विषयांध झाले ॥ ज्ञाने।

महाराज कहते हैं -

नाना चमत्कार नोहे हा प्रसाद। जेणे होय बोध सं

ईश्वरी शक्तीचा भोगात शेवट। प्रसाद अचाट प

?अभंग १०८६

३. मुमुक्षु-जिसे मोक्ष की इच्छा होती है वह मु संसार के वास्तव में घृणा हो चुकी है वह साधु से या प संसार सुख की कामना नहीं करता। स्वयं की दुखों की परमार्थ के लिए हितकारक ही मान लेता है। उसे इच्छा र सिर्फ ब्रह्मरूप होने की। उदाहरण के लिए श्रीनारदजीकी देहांत होने पर उन्होंने माया के पाश से मुक्त होने का समा मातृदुःख को ईश्वर का अनुग्रह माना और वे परमेश्वर प्राप्ति

की ओर चल पड़े।

नुकारामजी की पत्नी और बच्चे अकाल में मृत हुए। इस होने ईश्वर को धन्यवाद ही दिए हैं। उसी तरह उन्होंने पत्नी, बुरा संसार, खाने के लिए मोहताजी लोगों से अपमान को दुखकर बातों को परमार्थ के लिए सहायक समझकर स्वीकार कर लिया। सच्ची मुमुक्षुता यही है।

ने भी कहा, “मुझे दुख परंपरा देना जिससे तुम्हारा म हो”। श्रीकृष्ण से उसकी यही माँग थी।^१ इसका भी मर्म परमार्थ रामदासजी का कथन है—

दुःखे दुखावला । त्रिविध तापे तापला ।

श्री अधिकारी जाहला । परमार्थासी ॥

दुखों से संतप्त पुरुष ही परमार्थ का अधिकारी होता है। लोक में समर्थ रामदासजी लिखते हैं— “देह दुख को सुख” ॥१०॥ साधन चतुष्टय संपन्नता न होने से भी कुछ लोगों को कामना होती है किन्तु संसार उनसे छूटता नहीं । संसार ही धीरे-धीरे वे विषय भोगों का नियमन करते हैं और थोड़ा-बहुत प्रयत्न करते हैं। इसके लिए सभी संत और नामस्मरण का मार्ग बतलाते हैं। श्रीगुलाबराव महाराज “जब तक तीव्र मुमुक्षा उत्पन्न नहीं होती तब तक संसार परमार्थ की मसखरी करने के समान है। भीतर ही भीतर इच्छा बढ़ती जाए किन्तु बाहर के व्यवहार करते ही जाएँ। प्रेम से भजन कर वैराग्य का प्रयत्न किया जाए। तीव्र भाग्य का उदय होने तक शास्त्र के अनुरूप सदाचरण करके में परमार्थ विवेक की साधना की जाए। मध्यम के लिए उत्तम माना गया है।”^२ किन्तु इसके लिए भी सद्गुरु के

मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

शास्त्रज्ञो अपि स्वातंत्र्येण ब्रह्मान्वेषणं न कुर्यात्
स गुरुमेव अभिगच्छेत् ॥ उपनिषद्

इस तरह से वैदिक श्रुति से संतों तक सभी महात्मा शास्त्रों ने सद्गुरु की आवश्यकता बतलाई है। अतः हर सत्संगति और गुरु की खोज करने की बारी तो आती ही है। की यात्रा में साधक बहुत दोलायमान स्थिति में होता है। क्या नहीं” इस अष्टाक्षरी मंत्र की प्रतिध्वनि उसके कानों में रहती है। इस व्याकुल मनःस्थिति में यदि उसका वैराग्य मुमुक्षा में कोई कमी रह जाए, तो वह अनेक संकटों से थक

चमत्कार

इस मार्ग में प्रमुख संकट है, चमत्कारों का। वह च आभासों से मोहित हो जाता है तो उसका पतन अवश्य अतः चमत्कार देखने की अभिलाषा को उसे मन-ही-मन कर देना चाहिए।

व्युत्थाने सिद्धयः समाधौ उपसर्गाः ॥ योग सूत्र ३७

चमत्कारा न कर्तव्याः स्थाने कार्यविना क्वचित् ॥

भगवत् कष्टदा व्यर्थाः इति स्वमतनिर्णयः ॥१६॥

सिद्धि यह समाधि में विघ्न होते हैं, और व्युत्थान सिद्धया प्राप्त होती है। अतः चमत्कारों की ओर साधक ने ध्यान नहीं देना चाहिए, और सिद्धों को चाहिए कि वे न करें। यह बात को साधक अपने मन में बसाकर रखें।

आमतौर पर साधुओं के चरित्र से चमत्कार का मेत सहज हो गया है। किन्तु चमत्कार दिखलाना साधुओं का लक्षण नहीं है। साधु के पास चमत्कार करने का पूरा सामथ

कार करने वाला हर कोई साधु ही हो यह जरूरी नहीं है।
 वप्राप्त संत अक्सर चमत्कार नहीं करते। अपनी आत्मस्थिति
 बाहर दिखलाते नहीं। इसमें विपरीत-वेडीवेमाजी दडे।
 ॥ अतः चमत्कारों की ओर दुर्लक्ष किया जाए। जब
 समाधि के लिए विघ्न होते हैं, फिर उनकी उपयोगिता ही
 प्रतीत होना स्वाभाविक है। किन्तु चमत्कार समाधि का
 होने पर भी उसके दो लाभ हैं-

अपने ध्यानयोग समाधि प्राप्त होने तक के मार्ग पर हर
 या गलत है, यह जानने के लिए दीपस्तंभ के रूप में सिद्धि
 महत्वपूर्ण है। ये सिद्धियाँ परमार्थ के मार्ग के चिन्ह हैं।
 अनुसार आत्मप्रचीति हो रही है या नहीं, यह इन सिद्धियों
 लता है। इससे आगे कदम बढ़ाने में साधक में उत्साह
 है। साधक के लिए चमत्कारों का महत्त्व इतना ही है।
 पूर्णब्रह्मानुभव प्राप्त करने पर महात्मा इन सिद्धियों की ओर
 देता। किन्तु उसके पास यदि कोई अधिकारसंपन्न साधक
 उसके परमार्थमार्ग में बाधा आ रही हो, तो वह अपना
 खलाकर साधक के मन को राहत दिलाता है। उसके चंचल
 श्वस्त करते हैं, ढांडस बँधाते हैं। इस धीरज के बल पर
 से वह सभी संकटों को पार करता है, और परमार्थ को
 रता है। महात्माओं से व्यक्त होने वाले सारे चमत्कार
 सांसारिक ही होते हैं। किन्तु सांसारिक चमत्कार करने पर भी
 को प्रपंच से बाहर खींचता है। संसार को योग पाने के
 कार नहीं दिखलाए जाते, वरन् संसार त्याग के लिए होते
 इच्छुकों की कामना पूरी करना ही संतों का कार्य नहीं है।
 वयं संसार से पूरी तरह विरक्त होने के कारण अन्यो को

भी संसार से पूरी तरह विरक्त होने के कारण जग को तिल
 यह उनकी मन से जुड़ी इच्छा रहती है। किन्तु आम जनता
 नहीं पाती। अपने प्रपंच की वासनाएँ पूरी होने के लिए वे स
 पास जाते हैं। किन्तु सच्चे संत उन्हें चमत्कारों के लालच
 भ्रमित नहीं करते।

चमत्कार के कारण यह साधु कहलाता है, ऐसा विश
 उचित नहीं है। क्योंकि चमत्कार यह एकाग्र चित्त की ताक
 चाहे विकार पर या विचार पर एकाग्र हो उसके एकाग्र हो
 की सामर्थ्य अलौकिक रीति से व्यक्त होने लगती है, अं
 चमत्कार होने लगते हैं। अतः चमत्कार करने वाला वैराग्य
 ब्रह्मानुभवी मनुष्य ही हो, ऐसी शर्त नहीं है। चमत्कार के
 व्यक्ति में जो सामर्थ्य है, वह पता चलता है किन्तु वह परमे
 का रहस्य कदापि नहीं है। उदाहरण के लिए, हिप्नोटिज्म,
 सभी मन को एकाग्र करने के मार्ग हैं। उनके द्वारा मनुष्य
 सुलभ हो गए हैं। इसमें वैराग्य की जरूरत ही नहीं होती।
 की सामर्थ्य और इन विकारों पर मन एकाग्र करने वालों
 में मूलभूत अंतर है।

कभी-कभी छोटे बच्चे द्वारा सूचित बातें सच हो
 इसका कारण इन बच्चों में संशय भाव नहीं होता। उनका
 भी नहीं रहता। अतः उनके मन में उभरी बातें हूबहू सही
 हैं। आगे चलकर जैसे-जैसे उनका मन मलीन होता जा
 उनके चमत्कार भी नहीं हो पाते। इसी तरह से विचारगत
 और बच्चों द्वारा चमत्कार होते हैं। अतः इससे परमार्थ
 अनुमान करना ठीक नहीं है।

ऐसा होकर भी साधक और सामान्य लोगों को चम

विवंचना होता है। संत भी कुछ चमत्कार करें और हमारी विवंचना को दूर करें, या सिर पर हाथ धरकर ब्रह्मज्ञान यह आम जनता की स्वाभाविक इच्छा होती ही है। अतः रों की ओर आकर्षित होते हैं।

गुलाबराव महाराज साधुबोध ग्रंथ के सम्मिलित प्रश्नोत्तरों के छोटे-छोटे सुभाषितों के माध्यम से मार्मिक उत्तर देते हैं।^३ महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं-

मूर्ख और नीच पुरुष चमत्कारों के प्रति आदर भाव रखते हैं मध्यम पुरुष आचार को प्रथम स्थान देता है, और केवल तो सँपेरा भी दिखला सकता है। अतः वे सदाचार के सिवाय की ओर ध्यान नहीं देते।

उत्तम पुरुष ब्रह्मज्ञान को ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं। चमत्कार के लिए उपयोगी साबित होते हैं, और सदाचार का अनुकरण उपयोगी सिद्ध है। अतः चमत्कार व्यर्थ है। धर्म के अनुकूल वाला सदाचार स्वयं को दुर्गति से छुड़ाने के लिए और बाद लोगों को मार्गदर्शन के लिए उपयोगी होते हैं। अतः और ब्रह्मज्ञान यही निकष साधु-परीक्षा के लिए माने

उनके मन में चमत्कारों की अभिलाषा होती है, उनके समक्ष अपने मन का कोई मूल्य नहीं होता।^४ यह राम के समान चरित्र नहीं रखेंगे किन्तु पत्नी के मन में आने वाले पिशाच पर नहीं रखेंगे। उनके पूजाघर में शालिग्राम के साथ भूत और पीर की पत्नी है। ये लोग कितने ही धार्मिक हों उन पर विश्वास न रखा जाना के अनुरूप उनका धर्म हर दिन बदलता है। प्यासे को पानी भी बदले में वे कुछ चाहते हैं। उनके घर भोजन करने से

सयानों की अपकीर्ति होती है। अतः उनके घर टाले जाते हैं। कहकर अंत में महाराज कहते हैं-

“चमत्कारों की यदि आशा ही है तो अपनी ही इच्छा होनी चाहिए अन्यथा नहीं, इतना धीरज तो कम से कम धार्मिक को धारण करना चाहिए।”^५ इस अर्थ के अनेक महाराज अनेक प्रसंगों में कहते हैं, और चमत्कार के बतलाते हुए साधक के लिए चमत्कारों का महत्त्व कुछ सी होता है। साधु परीक्षा के लिए चमत्कार का यत्किंचित् नहीं होता इसे भी महाराज ने जगह-जगह पर स्पष्ट किया जनांसाठी संत मनी कळवळा । कृतघ्नता चाळा जनमनी साधु भेटलिया इच्छिती संसार । सिद्धि चमत्कार पाहुनिय पुरे आता नको ऐसियाचा संग । कपिचेष्टी अंग सदा ज्यांचे ।।^६

पागल और साधु

आजकल कुछ अनूठा व्यवहार देखने से साधु का हैं। जो सच्चे साधक कहलाते हैं, उनके जीवन में एक आता है कि, वे संसार का व्यवहार ठीक-ठीक कर नहीं व्यवहार करते समय ध्यान नहीं कर पाते, और ध्यान केंद्रित करने से व्यवहार में पागल समझे जाते हैं। किन्तु बाद जब उनकी उन्मत्त दशा समाप्त हो जाती है, और भाग्यवश या लोकहित के लिए सामान्य लोगों-सा व्यवहार लगते हैं। इस बीच की उन्मादावस्था के कारण सामान्य पागल करार दिए जाते हैं। अतः पागलों को ही साधु माना है। किन्तु ऐसे लोगों में साधकों को बहुत लाभ नहीं होता, और साधु का अंतर उन्हें समझ नहीं पड़ता। महाराज ने अपने अपने युक्तिवाद और शास्त्र के प्रमाणों के बल पर अपने

र स्पष्ट किया है। महाराज उन्मत्त, स्वकृतोन्मत्त, और ग्राही इन तीन प्रकार के उन्माद बताकर उनमें सच्चे साधु कैसे उसे पहचाना जाय, यह स्पष्ट करते हैं। इसके लिए मैं दी हैं-

उन्मत्त- किसी रोग से या मानसिक विकार से कुछ लोग आते हैं। इन सच्चे पागलों को साधु समझना शुद्ध मूर्खता है।

स्वकृतोन्मत्त- जो विकार मन में उठता है, उसके अनुसार को उसके नशा में डुबो देते हैं, मन एकाग्र करते हैं। इन ग्राहियों कभी-कभी चमत्कार भी घटित हो जाते हैं, कभी-कभी से आत्मोपदेश भी निकल पड़ता है, कभी-कभी बच्चों-बच्चों को बँधते हैं। इनमें और पागलों में बहुत अंतर नहीं होता। इन का कथन है।^६ अंतर इतना है कि, यह पागल की इच्छा से पागल जाते हैं, और वे अपनी इच्छा से पागल बन जाते हैं। राजा ऐसे लोगों को ही साधु करार देता है।

मिथ्योन्मादग्राही- ज्ञान होने के बाद ज्ञान की स्थिति के लिए और मान-अपमान के स्थान पर समता धरने के लिए महात्मा पागल-सा बर्ताव करते हैं। “शिष्टः शिष्टवत् न भवति। अडवत् चरेत्॥ इस प्रकार से श्रुति में उपदेश भी दिया गया है। सज्जनों-सा बर्ताव न करें, जड़-मूढ़-सा व्यवहार करें, यदि अपमान होता है तो ‘अमृतपानयोग’ कहकर सत्पुरुष को अपमान का स्वीकार करते हैं। ऐसे किए गए अपमान का शास्त्रों में क्या है। इन तीसरे लोगों के बारे में माऊली ज्ञानेश्वर ने कहा है-

चस्पतीचेनि पाडे । सर्वज्ञता जरी जोडे ।

जो वेडिवेमाजी दडे । महिमे भेणे ॥ ज्ञाने ।

भागवत में वर्णित ऋषभदेव जड़भरत आदि और गजानन महाराज, कादरभाई आदि इन तीसरे प्रकार में गिने जाते हैं। यह महाराज की मान्यता है। इन लोगों की तारंग स्थिति अत्यंत औपचारिक है, उन्होंने स्वयं कृपा किए बिना वे साधु हैं। यह कभी भी स्पष्ट नहीं हो पाता। अतः “नमन-पूजन, श्रद्धा उसका ही सब किया जाए किन्तु इस तारंग स्थिति के भक्तों को गुरुत्व का लेबल न चिपकाया जाए।” इस पथ्य का पालन करना बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है। इस बारे में ऋषभदेव और श्रीमद्भागवत् में इतिहास^७ अलौकिक व्याख्यानमाला में पढ़ने के लिए

मिथ्योन्मादग्राही साधुओं का परमार्थ-प्राप्ति की दृष्टि में उपयोग नहीं होता। फिर भी जब वे उपदेश करते हैं तब उनका उपयोग होता है। ऋषभदेव भरत के सौ पुत्रों को उपदेश देते हैं, और अर्जुन महाराज को उपदेश देते हैं। इन सब में आत्मप्राप्ति के लिए उपदेश सुनने वालों का परम कल्याण ही होता है। किन्तु इनका ही भाग्यवश सोने का खजाना मिलना होता है, अतः सबके काम-धाम छोड़कर खजाने का इंतजार करना और जीतना ही गँवाना मूर्खता है। उसी तरह मिथ्योन्मादग्राही साधु साधकों के लिए यत्किंचित् ही उपयोगी नहीं होते।

कुल मिलाकर इस तारंगस्थिति में सत्पुरुष की पहचान करना कठिन है। अतः ज्ञानी होकर भी, सदाचारसंपन्न रहकर सरेआम लोकसंग्रह करता है, ऐसे ही लोगों से विकार नष्ट होता है और मन एकाग्र करने की प्रक्रिया सीखनी चाहिए। अन्यथा विकार नहीं मिल पाता, और परमार्थ भी हाथ से छूट जाता है, अतः ही मिलता है^८ अतः

१. जिस पर संस्कार नहीं हो पाते, और जो विकार

अपनी एकाग्रता को रखता है।

ज्ञानी और उत्तम प्रक्रिया प्रवीण होकर भी स्वयं पर जोर नहीं करवाता, ऐसों से एकांगी शिक्षा पाकर विकृत रीतियों से नहीं सीखनी चाहिए।

सच है कि सत्पुरुष पागल-सा बर्ताव भी कर ले तो उन्हें होता। किन्तु दूसरे लोग यदि ऐसा बर्ताव करते हैं, तो उनसे सावधानी है, और वे नरक में जाते हैं। उनकी अधोगति निश्चित ही है। अज्ञानता में सनकी व्यक्तियों को साधु समझने की रीति है।^{१०} वे हुए और अभी होते नुकसान को हम देख ही रहे हैं। अतः साधु का रिश्ता जोड़ने में बड़ी ही सावधानी बरतनी आवश्यक है। यदि श्रद्धा जुड़ जाए तो नमस्कार-पूजा आदि अवश्य करें। साधु का रिश्ता कभी न जोड़ें अन्यथा परमार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। साधु का व्यवहार में मजाक बन जाता है।

साधु तो, इन साधुपरीक्षाओं में जैसे चमत्कार एक रूकावट है। साधु की रूकावट है अवतार संबंधी। कोई भी ऐरा-गैरा उठकर साधु को परमेश्वर का अवतार हूँ। परमार्थ के नाम पर राजयोग साधु को विषयों का उपभोग करता है। प्रारब्ध के नाम पर उसकी साधुता चलाएँ चलती हैं, किन्तु बेचारा साधक ठगा जाता है। इस बारे में साधु भोंदूगिरी का विश्लेषण और मार्मिक निर्णय देते हैं।

साधु का शब्दचित्र

साधु का अर्थ है ढोंगी, पाखंडी। साधु की परीक्षा करने पर ही साधु की पहचान करना सचमुच कठिन काम है। सच्चा साधु साधु की अन्तःस्थिति को प्रकट नहीं करता और केवल बाहरी आचरण साधु का बोध नहीं हो पाता। आत्मज्ञान-संपन्नता दिखलाई देती है। साधु और बाहरी व्यवहार भाग्य के समान कोई भी हो सकता

है। अंततः साधक के लिए साधु की खोज करने में कई उठ खड़ी होती है। और कभी-कभी ठगे जाने से संसार के बीच त्रिशंकु की अवस्था हो जाती है। सप्तमयष्टि में वेदों का मास्टरजी को भेजे गए दो पत्र^{१०} द्वादश यष्टि में योग और वेदांत और योग १२ ये दो पत्र इनसे और साधुबोध के प्रारंभ माध्यम से महाराज ने इन पाखंडियों के बारे में बहुत कुछ

जो स्वयं शरीर से कष्ट नहीं करना चाहते, और साधु की जीवन्मुक्ति मानकर चलते हैं, उन्हें ही जीविकोपार्जन के लिए साधु करनी होती है। कोई गुरु कहलाने वाला यदि स्वयं प्रभावकारी होने लगते ही अपने ही शिष्यों में उस गुरु की प्रारंभ कर देते हैं। संस्कृत विद्वान आगे आता है तो लोकव्यवहार आडंबर दिखलाकर प्राकृत भाषा के माध्यम से उसे रोकना साधु तुकारामजी के अभंगों से कीर्तन करने वाला सामने आता है। संस्कृत की दो विभक्तियों में उसे फाँसना चाहिए। कुछ भ्रम हो तो शांत रहा जा सकता है। कोई ज्ञानी मिलता है तो उसकी प्रशंसा और उपासक के समक्ष ज्ञान की प्रशंसा करनी चाहिए। मूर्तिपूजा को पत्थर की पूजा कहकर स्वदेह की पूजा माहिर बनना होता है।

वेश्या को धन देने से ही उससे कुछ प्राप्त होता है। साधु को कुत्ते को खिलाने पर ही वह ईमानदारी से धन देकर करता है।

किन्तु महाराज कहते हैं कि “हम लोगों को चंदा उसके बदले में कुछ नहीं देते। वेदांत की आड़ में छिपकर साधु किया जा सकता है। काम, क्रोध, मद, मत्सर सब कुछ साधु ओट में अपनाए जाते हैं। आत्मानुसंधान के नाम पर गंद

की उनके समर्थक भोंदुगुरु को ईश्वर के हाथों कोई शिक्षा नहीं देते। पहले अपने ही विकार छिपाकर फिर शिष्यों के रूप में वे प्रकट हों जिससे प्रारब्ध की सहायता से उन्हें हा जा सके। विकार बाहर निकलने तक शुकाचार्यजी की चारी फिर कृष्ण के समान सर्वसमर्थ भोगी होते हैं। कर्मठ वह तुच्छ वस्तु के पीछे दौड़ रहा है, यह कहते हैं। नाम स देह को ऐसा कहते हैं, मानो यह देह अब्रह्म स्थान पर है।” महाराज कहते हैं- “हरे-हरे। इस मक्कारी के जंजाल से छूटेगा यह मुझे बड़ा रहस्यमय जान पड़ता है।”

बात हमेशा ही कम होती है, वह बड़े प्रमाण में दिखलाई उसमें कुछ मक्कारी अवश्य होती है, यह सृष्टि का नियम के दल का यह हमला जहाँ जा गिरेगा उस घर की, विनाश निश्चित ही है। सब कुछ ब्रह्म है। अतः त्याग वृत्ति भोगवृत्ति में ही अधिक उत्साह होता है।

बार मुक्ति मिलते ही उसे संसार की व्यवस्था करनी होती देने से वेश्या मनोरंजन करती है। किन्तु हम जैसों को तो पर लोगों का मन तोड़ना होता है। यह व्यवसाय तो बूढ़े भी बंद नहीं होता।

और सत्कर्मों से वेश्याओं को भगा दिया जाता है किन्तु तीर्थ और सत्कर्मों की शोभा बढ़ती नहीं है।

लोगों की चाल किसी ने भी अच्छी तरह से जानी नहीं है।

वर्त हमारे ही वर्ग की हाथों चकनाचूर हो गया है।

का सजना-सँवरना रोक-टोक होता है, हमारा सजना- रोक है, बेहिसाब है।

दूसरा हमसे समान कहा जाए ऐसा कुत्ता ही हैं। कुत्ते भी बाहर फेका गया अन्न चलता है, किन्तु ताजी ज्वार की चलती, लड्डू और मिठाई चाहिए।

कुत्ता एक मालिक के घर रहता है। हमें तो रोज नया खोजना होता है।

तीसरा वर्ग जो हमारे जैसा है वह है गधों का। किन्तु में लेटता है हम गधों पर सोते हैं, अंतर मात्र इतना ही है।

कौआ मृतों का पिंड खाता है, और हम जीवितों भक्षण करते हैं। यही हमारे में कौओं से अधिक विशेष है।

हमारे में दो वर्ग हैं। मूर्ख और सयाना। मूर्ख लोगों की का साधन वेदांत होता है। सारी आशाओं को कायम र विदेही भाव से रहना पहले वर्ग का लक्षण है। हम अपने मिलते हैं। अर्थात् दोनों जल-भुनकर राख हो जाते हैं। कि दण्डवत् करना पड़ता है। आमतौर पर लोगों को सम्मान देने पर उद्धतता का व्यवहार करना होता है, और शब्दों में बरतना होता है। किसी के मिलने आने पर सीधे ‘आओ’ अपेक्षा आइए, आइए, कब आये, कई दिनों बाद दिखल मैं तो आपके चरणों का दास हूँ, आदि कहना होता है। शास्त्र नहीं जानते, अतः रूपकों में कुछ न कुछ कहना होता उसका अर्थ लोग अपने ढंग से कर लेते हैं। अनुग्रह करना मनुष्य को माँ-बाप के खिलाफ और पत्नी को पति के खिला करने के लिए कहते हैं। किन्तु जहाँ पति हमारे कहे अनुसार पाता, वहीं उसे पति सेवा बतलाते हैं, जहाँ पत्नी का वर्चस्व वहाँ हम वर बन जाते हैं। “हमारा उद्धार करने के लिए शीघ्र ही अवतार धारण करें। हर योगी को पूर्वजन्म के ही

अपेक्षा वही पत्नी ही मिलती है। किन्तु इस जन्म में उसे की आवश्यकता है क्या? दत्तात्रेय यह ब्रह्मचारी ब्राह्मण। मानों के रूप में जन्म लेकर पूर्वजन्म की बीवियों की खोज कार्य क्योंकर आ पड़ा, कुछ समझ नहीं पाते।”

तरह की नाना प्रकार की भोंदूगिरी को महाराज अँधेरे से प्रकाश में ला रहे हैं। सच देखा जाए तो परमार्थ में कोई को ठग नहीं सकता। जो केवल निष्काम है, जिसने अपने पर आग धर दी है, और परमेश्वर प्राप्ति का दृढ़ निश्चय है, उसे ठगने वाला आज तक कोई भी उत्पन्न नहीं होत भारी पत्थर में यदि दृढ़ परमेश्वर की भावना हो तो, वहाँ आविर्भूत होकर भक्त का मनोरथ पूरा करता है, साक्षात् जाने वाला मानव मूर्ति के स्थान पर श्रद्धा होने से क्या उसकी पुकार को सुनेगा नहीं? यह कदापि संभव नहीं।

शिवोपासक राजा था। उसे एक जंगली भील ने पूछा— कैसे की जाती है? राजा ने कहा तुम रोज नये चिताभस्म जाओ शिव तुमसे प्रसन्न होंगे। उसकी राजा के वचनों पर उठर गई। वह उसी तरह से पूजा करने लगा। किन्तु एक दिन से भी चिता-भस्म नहीं मिल पाया, तो उसकी बीवी ने जला लिया। भील ने उसके भस्म से शिव पूजा की और तरह आरती में पहले, “नैवेद्य लाओ”, कहकर बीवी को शिवकृपा से वह जी उठी और नैवेद्य की थाली लेकर गई। इसे देख दोनों के नेत्रों में आँसू बहने लगे। उसी समय दर्शन हुए और दोनों कृतार्थ हुये। यह प्रसंग राजा ने जाना। भ्रमरज हुआ। हमें साक्षात्कार नहीं हुआ, किन्तु हमारे शब्दों

पर विश्वास रखकर उस जंगली भील का उद्धार हो गया। जैसे ही रूखे रह गए। यह जानकर उसे बड़ा दुख हुआ। अंतर्गत भक्तिभाव देखकर भगवान शंकर उसे भी कृतार्थ करते हैं।

इसी तरह मीराबाई के बचपन का प्रसंग है। बचपन में उसे कृष्णमूर्ति दे जाता है। आगे उसे साक्षात्कार होता है। में वह साधु फिर आता है, तो गुरु कहकर मीराबाई उनकी हैं। किन्तु साधु जब उसकी साक्षात्कार की बात जान प साधु उस से प्रार्थना करता है कि “मुझे भी कृष्णदर्शन क मीराबाई श्रीकृष्ण को पुकारती है, और गुरु को भी साक्षात् देती है। इन दोनों प्रसंगों से यही स्पष्ट होता है कि, श्रद्धा ईश्वर साधक को कृतार्थ करते हैं। कोई भी दृढ़ श्रद्धावान ब सकता। उसी तरह से पतिव्रताओं को पति को ही परमेश्वर मानने की बात शास्त्रों ने बताई है। पति के माध्यम से पतिव्र साक्षात्कार करा देता है। ऐसा न होता तो अज्ञानी पति करके क्या पतिव्रता पूर्ण बन पाती? अतः ‘प्रतिफल में अप भावना’ यह ज्ञानदेवजी का वचन सार्थक कहलाता है।

किन्तु ऐसा होने पर भी सामान्य साधक की इतनी रहती। परमार्थ सहज साध्य हो तो उसे चाहिए। परिवार उसकी इच्छा नहीं होती। अतः इस संसार को छोड़ने वैराग्य का ढोंग रचता है। और यदि साधु कुछ माँगता है, त्याग का प्रसंग आता है, तो वह घबरा जाता है, और र ‘लोभी’ दांभिक कहने लगता है। अपने ही गुरु को भला-बुरा तैसे संसारी आसक्त । परस्पर मिसळती काकवत मग गुरूदोष पाहती अखंडित । तयांचे वचन प्रमा

प्रदायसुरतररू

हमारे देरी से पहुँचने पर गाड़ी स्टेशन से चल देती है। भूल ही होती है। पर हम कहते हैं गाड़ी चूक गई। हम अपनी पर लादते हैं। उसी तरह से ठगने वाला साधक सर्वस्व तैयारी दिखलाता है, किन्तु समय आने पर पीछे हट जाता ब्रनकर साधुओं को ठगता है। और सर्वस्व देने के प्रसंग में ही ठगा' कहकर चिल्लाता है। अतः पहले शास्त्रशुद्ध वर्णाश्रमधर्म का पालन अचूक ढंग से किया जाए। साधक रखे और वैराग्य पाने का यत्न करता रहे। उससे ही सच्ची पन्न होती है। उसके बाद ही वैराग्य के बल पर परमार्थ क निर्विघ्न रूप से पार हो सकता है। महाराज कहते हैं- स्व अर्पण किया जा सकता है, या मेरा कुछ भी नहीं है, हते हैं वह कभी भी ठगा नहीं जाता।^{१३} जो जग में मेरा समझता है, या अर्पण करते समय जिसे सदैव कुछ हाथ होता है। वह सदैव ही ठगा जाता है।^{१४} इसी सर्वस्व त्याग आकर जो गुरु को ठगना चाहते हैं ऐसे सांसारिक लोगों को ही मिलते हैं। परमेश्वर ने भोंदू शिष्यों के लिए गुरु की खूब बनाकर रखी है। ठगने वाले शिष्यों को गुरु ठगता है। सरे व्यक्ति को बुरा लगना नहीं चाहिए। यह व्यवहार का, जो चुकता करना है।

पण दुसरिया फसविती । गुरुने फसविले म्हणोनी रडती ।

सेयासाठी श्रीपती । ढोंगी गुरुस निर्मितो ॥

गे दैत्यास मोहावया निर्मिली सुरा ।

बाईल होऊनी गेला विरोचनाच्या घरा ॥

या लोकिकां ठकां अचतुरां । ठकवाया महाठक ॥

सच्छिष्यही फसेल म्हणोन । लोभी गुरुंचे दोषदर्शन
एव्ही फसला तयाकारण । श्रद्धा फलदात्री ॥

लोक फसव्यासी फसवावया । फसव्या गुरुची उत्त
ते तवं प्रशंसा करावया । पात्रचि आहे ॥

जैसा वेश्यांच्या गृहीं । ठेका ठेवती नानकशाही ॥

यह संप्रदायसुरतररू में महाराज कठोर भाषा में

सत्शिष्य भूल न कर पाए, अतः पहले ही सावधानी बरत लोभी गुरुओं के दोष दर्शन बतला दिए हैं। और भूल से यदि भी जाता है, तो उसकी दृढ़ निष्ठा, श्रद्धा उचित फल देती ठगने वाला शिष्य की चिंता न की जाय। फंसने वाले लोगों के लिए ठगने वाले गुरु का आचरण बराबर होता है। इत से रखे गए विचार एकनाथजी का स्मरण करा देते है।

तोंवरी तोंवरी माळांचे भूषण । जंव तुकयाचे दर्शन इ

तुका म्हणे ऐशा नरा । मोजुनी मारा पैजारा ॥

गुरु को पत्नी अर्पित करना

गुरु को पत्नी अर्पित करने के बारे में महाराज के ही स्पष्ट हैं। वे कहते हैं^{१५} “गुरु को शिष्यों की पत्नियों करना यह सारे चोचले हैं। यह धर्म न होकर मजाक है। ध पर अपने आपका तलीराम (शराबी, व्यसनों का दास) पूर है। इसमें प्रश्न यह है कि, क्या स्त्रियों का अपना आत्मनि है या नहीं? यदि है तो पति को सर्वस्व अर्पित कर लेने के आत्मनिवेदन करने योग्य स्वातंत्र्य उन्हें कैसे मिल सकेगा? में मक्कारी, चालाकी, सभी एक हो जाते हैं। मुँह दाबकर के लिए ही यह व्यवस्था की गई है। कहा जाए तो स्त्री श वचन देकर पीछा छुड़ा सकती है, कि मैं इस जन्म में वि

और दाभिकता (२३)
 म में कुवाँरी बनकर आपसे ब्याह करूँगी, २. यदि पति को
 है, तो उसि को छोड़ दे, ३. यदि स्वयं वह ही ऐसा
 पसंद करती है तो वह गुरु के घर ही रहे। पति के घर आकर
 करे।”

रे कुछ साधु कहलाने वाले मूर्ख दूसरों के घरों में घुसकर
 । वह भी उचित नहीं है।^{१६} क्योंकि लोगों के हक को जैसे
 परिित करता है, उसी तरह धार्मिक अधिकारों का भी शास्त्र
 है। “मुझ पर कृपा करें, मुझे अनुग्रह दे,” ऐसा कहने पर ही
 या जाता है, अन्यथा शास्त्र में बिना माँगे अनुग्रह करने की
 भी नहीं बताई जाती। “इसके विपरित व्यवहार करने वाले
 घुसकर मंत्र देने वाले राजा की आज्ञा से मार दिए जाएँ।”
 वैद्य जीवित जलाएँ।^{१७}

पाखंडी गुरु की पहचान

ना-पीना ठीक-ठीक रखकर ब्रह्मनिष्ठा की बढ़ाई करने
 पने ही तन की ओर ध्यान रखकर शरणागत की ओर ध्यान
 ना साधु नहीं कहलाता। यह एक अबाधित पहचान है।^{१८}
 ना नहीं, यह पहचानना कठिन है। किन्तु मुक्ति के नाम पर
 भी करने लगे तो ऐसों को मार दिलाने में कोई पाप नहीं है
 त्र बल के आधार पर कहता हूँ।^{१९} यह महाराज का कथन है।
 व तक देखा कि पाखंडी कैसा होता है? अब हम देखेंगे कि
 यु वर्ग से महात्मा की खोज कैसे की जाए और उसे गुरु
 षीकार करने से पहले क्या किया जाना चाहिए आदि।

प्रश्नकदंब

ममें थोड़ी-बहुत मुमुक्षा उत्पन्न हुई है, जो वैराग्य का
 करने लगे हैं, ऐसे साधक के पत्र^{२०} और प्रश्नकदंब^{२१} नामक

(२४) शुद्ध परमार्थ
 चार अध्यायों का एक ग्रंथ इस संदर्भ में पठनीय है। इस प्रश्न
 प्रश्नोपनिषद् कह सकते हैं। स्वयं को योगी, ज्ञानी कहलाने
 लिए मानो यह परीक्षा का पर्चा ही है। इस पर्चे में प्रश्न
 महाराज ने नहीं दिए । वे कहते हैं समय आने पर उन प्रश्न
 तुकारामजी के अभंगों की सहायता से दिए जा सकते हैं। ये
 बहुत ही मनोरंजक और भौंदू साधुओं को हटाकर उन
 बनाने वाले हैं। योग के बिना वेदों के तोता-रटंत बनने
 मार्मिक और अनुभव के प्रश्न पूछकर संकट में डाल दिया
 गुरु से अनुभव संबंधी प्रश्न कैसे पूछें यह इससे ज्ञात हो
 प्रश्नों के उत्तर अनुभवी अधिकारी के सिवाय अन्य कोई
 यह नियम होने पर भी उन अधिकारी जिज्ञासु इन प्रश्नों
 इस बात की मनाई नहीं है।

“इस प्रश्नकदंब के माध्यम से हमारे जैसे लोगों को
 भरने वालों की नाड़ी हाथ आने वाली हैं । धर्म और भ
 मानकर वेदांती कहलाने वालों की परीक्षा लेने हेतु मैं इस
 को लिख रहा हूँ। उसे मराठी में लिखने का कारण
 संस्कृतवेत्ता जिस प्रकार की मक्कारी करते हैं वह वे कर

मूर्ख साधूंचे करावया कंडन । प्रश्नकदंब चालवा पुं
 तयांची फजिती करू आम्ही । हे बोलिले शांतहि तुकाराम

इन प्रश्नोपनिषद् की रचना से महाराज ठगने वाले र
 खात्मा करने के लिए उनसे साधक को बचाने का आश्वा
 यह महत्त्वपूर्ण है कि आजकल जीवन की पद्धति से अ
 प्रणाली से शास्त्राभ्यास करने के लिए समय ही नहीं बचत
 पूर्व संचित के कारण या सांसारिक दुःखों के कारण लोगों
 की इच्छा कभी-कभी उत्पन्न होती है, किन्तु शास्त्रज्ञान

कारण उनकी बड़ी दुर्गति होती है। इन लोगों को आसान मार्ग की अपेक्षा होती है। अतः ये महात्मा, योगी ज्ञानी या प में व्यक्तियों से अनुग्रह पाने की ओर दौड़ पड़ते हैं। किन्तु व्यक्तियों के पीछे चलकर परमार्थ तय नहीं हो सकता और ध्वस्त हो जाता है, ऐसा न हो इसलिए साधक को कैसा ए और वह कौन-सी परीक्षा देकर गुरु का चुनाव करे, यह आवश्यक है। साधक अपनी परंपरा से प्राप्त धर्म न छोड़े, योग का एकसाथ अध्ययन करे, ऐसा योगवासिष्ठ आदि ग्रंथों में कहते हैं। इतना होकर भी जो लोग उसके परमार्थ का उपदेश करते हैं, उनकी पोल खोलने के लिए के अनुभव संबंधी प्रश्न गुरु से पूछने की बात महाराज करते हैं। इन प्रश्नों के संभाव्य उत्तर क्या होंगे उसका अंदाजा प्रश्नकदंब में दिखा देते हैं। और इन उत्तरों से फिर उन्हें साए, उन्हें कैसे रोका जाए, आदि के बारे में अनेक मार्मिक देखलाए हैं। इन प्रश्न-उपप्रश्नों में अनुभव के सूक्ष्म धागे से गूँथे गए है, कि स्वयं को साधु कहलाने वाला उस बाहर निकल ही नहीं सकता। ये सारे मूल प्रश्न और उपस्थित उपप्रश्न इनका गहरा अध्ययन करके साधु की जाए और फिर अनुग्रह लिया जाए या नहीं, यह तय करना महाराज के इन प्रश्नोपनिषद के विश्लेषण से सच्चे जिज्ञासुओं लाभ होगा। अतः महाराज का ग्रंथ पढ़ने वालों को गलत ले जाने का संभाव्य धोखा टल सकता है, ऐसा निश्चित सकता है।

महाराज भोंदूगीरि का विश्लेषण करते समय कौन-सी पगडंडियाँ, प्रदर्शक, उनसे बचाव कैसे किया जाए, आदि के बारे में

असंख्य विचार अनेक स्थलों में बतलाए हैं। उसके अनुसार लेकर गुरुजी पास होने पर फिर साधक को शिष्य बनकर उनका पालन करें, और स्वयं भी उस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाए। आजकल गुरु कैसा होना चाहिए, उसके लक्षणों को शिष्य और शिष्य कैसा हो, यह गुरु देखता है किन्तु स्वयं पर क्या होती है, उसे खुद ही नहीं जानते। अतः गुरु को चाहिए कि साधक की परख करे और शिष्य को चाहिए, वह गुरु की परख करे। गुरु ही चाहिए कि अपनी-अपनी जिम्मेदारी सँभालें और गुरु-जोड़ी संसार को मार्गदर्शन करने में समर्थ हो।

गुरु-शिष्य : आपसी बंधन

साधक एक बार गुरु की परीक्षा लेकर सद्गुणसंपन्न शिष्यत्व स्वीकार कर लेने के बाद फिर वह किसी भी परिस्थिति में अपनी निष्ठा कम नहीं होने देता। एक बार संप्रदाय को स्वीकार लेने पर बंधन तो आएँ ही। इस बंधन से छुटकारा ही नहीं मिलेगा भी भयानक प्रसंग हो शिष्य को गुरु की उत्तरोत्तर दृढ़ निष्ठा रखनी ही चाहिए। उसी में उसका अंतिम कल्याण निहित है। महाराज के जीवन के कुछ प्रसंग चरित्र ग्रंथ में समझने के लिए संप्रदायसुरतरु में महाराज कहते हैं कि-“मैं यदि कुमार्ग पर चले मुझे भी आप सांप्रदायिकों ने रोकना चाहिए। गोरखनाथ मरिच को स्त्रीराज्य से खींचकर लाते हैं, और स्वयं नाथ संप्रदाय के शिष्य हैं। उसी तरह मेरे विकार मैं रोक नहीं सकता तो मेरे शिष्य भी बचाएँ। और मैं भी सांप्रदायिकों की भूल पर उन्हें सजा देना इसे सहन करें किन्तु संप्रदाय छोड़ने की बात भी न सोचें। यह बड़े ही दुख और विपरीत पर्यावसान का कारण है। अतः गुरु-शिष्य संबंध कभी न तोड़ा जाए। मन की श्रद्धा भावना

ने दें।”

रो सोडू नये संप्रदाय । श्रद्धानाश दुःखद होय ।

वत्त रक्षायाची धरावी सोय । हा निश्चय सांगतो मी ॥ (२३)

उसी तरह से महाराज स्वयं ही संशय व्यक्त करके उस निमित्त अपने अनुयायियों को उपदेश करते हैं। ‘अस्माकं सुचरितानि ने नो इतराणि।’ इस तैत्तरीय श्रुति का अर्थ अपने जीवन में चाहिए। वे कहते हैं कि “इस गुरु शिष्य के परस्पर खींचातानी शिष्य मर जाए या सारे जग का उद्धार हो, किन्तु मेरे साथ यही यह मधुराद्वैतसंप्रदाय छोड़ने की बात मन में न लाएँ।” विवेचन से सुधार करने की प्रबल इच्छा प्रयत्न और कभी विचलित न हो, यही महाराज की दृढ़ कामना है। इन पूर्ण तथ्यों को परमार्थ मार्ग के पाथेय कहकर साधकों को सहेजकर रखना जरूरी है।

कैसे बनाया जाय ?

परमार्थ का दम भरने वाले तथाकथित साधुओं के अंधेरखाते को पहचानना कठिन है। और उसमें से भी सद्गुरु कहकर वीकार हो, यह समझना उससे भी कठिन है। महाराज की अनेक कसौटियों में इन तीन महत्त्वपूर्ण कसौटियों को हम

रे परमार्थ का अनुभव, जीवन से अविरोध और दूसरों को इच्छा इन तीन बातों से एक व्यक्ति परिपूर्ण होगा तो वह गुरु-शिष्य का भार संवहन करने में सशक्त साबित होता है।^{२४} गुरु के लक्षण न्यायशास्त्र के तर्कशुद्ध चौखट में रखकर सिद्ध किया है।”

पूर्ण ब्रह्मानुभव न होगा तो उसका गुरु के रूप में कोई

उपयोग नहीं है।

२. किसी को परमार्थ का पूरा अनुभव होगा तो, उससे विरोध होगा तो यह महात्मा जंगल या अकेले में रहने उसकी ओर जाने वाला एखाद लाभ कर लेगा। अन्य सांसारिकों को मुमुक्षू बनाकर उनके उद्धार की कोशिश वह महात्मा करेगा। अतः संसार से अविरोध रहना आवश्यक है। होना ध्यान में रखना नितांत जरूरी है।

३. पूर्णब्रह्मानुभव और संसार से अविरोध इन दो गुणों पर भी दूसरों को सुधारने की इच्छा यदि साधु में नहीं हो, तो महात्मा स्वयं जीवन्मुक्ति का सुख पाएगा। और दूसरों को सुधारने का औदार्यपूर्ण कार्य उसके हाथों नहीं हो सकेगा।

यह तीनों विशेषतायें एक व्यक्ति में होने पर ही उपलब्ध में जाएं। और साधक अपने को साधनचतुष्टय संपन्न आजकल गुरु और शिष्य दोनों ही अपनी-अपनी जिम्मेदारी दूसरे पर ढकेल देते हैं। और गुरुवर्ग विलासी बन जाता है। उसके साथ धोखाधड़ी की गई है, कहकर रोता ही रहता है।

तीन प्रकार की दोष दृष्टि

बेचारा साधक यह सहज रूप से नहीं जान पाता कि ‘परमार्थ का अनुभव’ किसके पास है। अतः वह ठगावट अनुभव का लालच दिखलाकर उल्लू बनाने वाले पेटपोसुओं की चपेट से छूटकर बेचारा मुमुक्षू निराश हो जाता है। उचित नीति को ही सर्वश्रेष्ठ जानकर सभी ओर दोष देखने लगता है। दोषदृष्टि बिलकुल ही निरर्थक नहीं है, वरन् इसके कारण फाँसने का अवसर नहीं आ सकता। किन्तु इस दोषदृष्टि व साधु नहीं है, ऐसा समझना घातक ही है। योग्य उपयोग ह

वैषम्य बन जाता है। और मूर्खता से अन्न भी मारक बन जाता है। अतः इस दोषदृष्टि का उपयोग कैसे किया जाए इस बारे में विचार-वचन करते हैं। उन्होंने इस दोषदृष्टि के तीन प्रकार बतलाये

वैयक्तिक दोषदृष्टि— अपने ही मन के विरुद्ध जो कुछ दोषपूर्ण है, यह वैयक्तिक दोषदृष्टि कहलाती है। यह गुणों का गुणरूप देती है। स्वयं की पसंद के अनुरूप न होने वाला, अतः अच्छा और बुरा कर भी वह जँचता नहीं है। अतः ऐसी दोषदृष्टि परमार्थ में नहीं होती है। परमार्थ तो दूर ही रखिए व्यवहार, घर, देश, धर्म आदि में पर इससे कलह निर्माण होता है। और सर्वस्व का नाश यही दोषदृष्टि कहलाती है। अर्थात् यह सर्वथैव त्याज्य है।

सामाजिक दोषदृष्टि— यह कुछ अंशों में ठीक है। और अतः बुरा है। “समाज के खिलाफ जो-जो है वह बुरा है।” अतः धारा इसमें निहित है। हर नीति परस्पर भिन्न होती हैं, हर समाज की दृष्टि से बुरा होता है। एक ही समाज में हर व्यक्ति कुछ दोष तो होते ही हैं, उसी तरह से किसी समाज में व्यक्ति को अच्छा कहाँ तो परिवार उस व्यक्ति को बुरा और परिवार भला करता है तो समाज उसे बुरा कहता है। अतः अर्थ में यह सोच विशेष उपयुक्त न होकर भी समाज में इस दोषदृष्टि को अच्छा तो कहलाते ही हैं। यही है सामाजिक

शास्त्रीय दोषदृष्टि— यह श्रेष्ठतम है। और मुमुक्षुओं का अन्तर्द्वेष करने वाली जननी है। “शास्त्र के खिलाफ जो कुछ है सब अज्ञान बुद्धि को शास्त्रीय दोषदृष्टि कहा गया है। ऐसी दृष्टि का

मुमुक्षू पेटपोसुवा के चंगुल में नहीं फँसता। और समाज से अलग होते हुए अपना ही पारमार्थिक कल्याण कर लेता है। केवल केवल वचन से शास्त्रीय क्या है? अशास्त्रीय क्या है? यह नहीं जा सकता। अतः इसे सीखना पड़ता है। एक बार अपना अपना ली जाती है, तो नीरक्षीरन्याय के अनुसार पारमार्थिकता वालों के सच-झूठ का पता चल ही जाता है। अतः मुमुक्षू कि वे प्रयत्नपूर्वक अपने में शास्त्रीय दोषदृष्टि को आत्मसात उसका विकास करते रहें। इसी दृष्टि का विकास करके परख की जाए।

गुरुप्राप्ति के लिए प्रयत्न

लोगों में यह धारणा प्रचलित है कि, “साधक को मिलते ही सद्गुरु स्वयं ही उसे खोज लेते हैं। और अनुग्रह यह कुछ अंश में ही सत्य है। किन्तु उपनिषद् में—

गुरुमेव अभिगच्छेत्। श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥ और गीता

परिप्रश्नेन सेवया, उपदेश्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदा

यह स्पष्ट ही लिखा गया है। श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु शिष्य अपनी अंजुली को जोड़कर जाए, उनकी सेवा पूछकर शंकाओं का निरसन करे, जिससे श्रीगुरु उसे ज्ञान करते हैं। यही उस सबका भावार्थ है। तब उपरोक्त समाज ठीक है इस बारे में संशय उत्पन्न होता है। महाराज इन दोनों समन्वय करके सारसन्निवेश बतलाते हैं। वे लिखते हैं—

१. वर्णाश्रम के योग से सदाचरण करते हुए चित्तस्थ वाले,

२. पहले संसार में अधर्म करके फिर दुख से पश्चान्तरण होते हैं, ऐसे दो प्रकार के साधक होते हैं।

म प्रकार के साधकों को अनायास ही सद्गुरु की प्राप्ति यह नियम ठीक है। परंतु गुरु-प्राप्ति के बाद गुरुगृहनिवास, परिप्रश्न आदि ज्ञान-प्राप्ति के लिए करना ही होता है।

रे प्रकार के लोगों के घर श्रीगुरु स्वयं चलकर नहीं आते। ऐसे गगवत के कदर्यू के समान कोई एक ही हो सकता है। अतः राज बड़ी कठिन होने पर भी साधक को स्वयं ही करनी होती रे में तुकाराम महाराज संतों की पहचान की एक कसौटी

संत ओळखावे कैसे । आपण व्हावे तैसे तेव्हा कळे ॥

न्तु यह कसौटी अन्योन्याश्रय दोष से युक्त है। संत होने के को पहचानना चाहिए, उनकी सेवा करनी चाहिए। स्वयं ही ब्रेना उन्हें पहचाना नहीं जा सकता। अतः इस कसौटी का उपयोग करना सफल नहीं होता। महाराज एक दूसरी ही तलाते हैं। उस कसौटी का उपयोग करने वाला साधक उपरी ना चाहिए। जिन साधकों को गुरुपरीक्षा की अति आवश्यकता से संशयी साधक तीन प्रकार के होते हैं। उनमें से अंतिम दर्जे ही इस योगशास्त्र की कसौटी पर अपने गुरु की पहचान है।^{२६}

देह में ताकत नहीं है, किन्तु उतावले बनकर कुछ लोग करते हैं, किन्तु वैराग्य की मार सहन न कर पाने के कारण भला-बुरा कहते हैं। उन्हें सच्चे साधु से कुछ भी लाभ नहीं । उन्हें चाहिए कि वे साधु की खोज ही छोड़ दें, घर पर श्रम के अनुसार धर्माचरण करते हुए परिवार चलाएँ। धर्म ही चित्तशुद्धि होगी, और फिर वैराग्य उत्पन्न होगा। इसके शास्त्राभ्यास और श्रवण, मनन, निदिध्यासन करते रहें।

जिससे आगे चलकर कहीं-न-कहीं कल्याणकारी मार्ग दि है। 'नहि कल्याण कृत कश्चिद् द्रुर्गतिं तात गच्छति।' इस भरोसा रखकर धीरे-धीरे अपने अधिकारों को बढ़ाते रहें

२. वैराग्य आदि अच्छे गुण होकर भी उचित गुरु न कारण पछताते हुए घर लौटने वाले दूसरे दर्जे के साधक यह भी उपरोक्त रीति के अनुसार ही घर-बार न छोड़ते रहकर धर्मशास्त्र के अनुसार वर्तन करते रहें। वैराग्यादि सा प्राप्त करते रहें। जिससे आगे चित्तशुद्धि होकर सत्संग लगता है।

३. ऊँचे दर्जे के साधक वैरागी आदि साधनसंपन्न किन्तु परमार्थ की ठगबाजी से त्रस्त हो उठते हैं। कहाँ जान जाना, यह सोचते हुए वे घर पर ही बैठे रहते हैं। सत्पुरुषों के का साहस उनमें नहीं होता, ऐसे उत्तम साधकों के लिए मह प्राप्ति को योग का उपाय सुझाते हैं।^{२७}

योग में गुरुदर्शन की कसौटी

पातंजलि के योगदर्शन में सिद्ध दर्शन के बारे में ए उपलब्ध है। उसे ही गुरु निश्चिती का उत्तम उपाय म "मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्॥" महाराज कहते हैं-इस सूत्र से सिद्धों के दर्शन होते हैं। उनमें से अपने गुरु की पहचान दिशा बतलाई गई है। मस्तक में एक प्रकाशमयी छिद्र हो संयम किए जाने पर पृथ्वी, अंतरिक्ष और स्वर्ग के सिद्धों के हैं। उनमें जो गुरु अपने होते हैं वे द्विदलचक्र पर विराजमा देते हैं। इसे ही गुरु की खोज की उत्तम रीति कहा गया है। समय, जो कुछ कचित् प्राणायाम हम करते हैं, उनमें कु लाने पर, ऐसा संयम संभव है। अतः साधक को स्प

“मूर्धाधारण बतलाइए, जिससे मैं आपके स्वरूप को
करूँगा”। यदि वे उसके जन्मजन्मांतर के गुरु हैं तो वे
शिष्य की इस माँग को पूरा करते हैं। और द्विदलचक्र पर
है।

भक्ति

भक्ति रीति से गुरु तय हो जाने पर उनकी सेवा और भक्ति
केया जाता है। शिष्य गुरु को साक्षात् परब्रह्म मानकर सेवा
करता है। यदि उसके मन में गुरु के प्रति ईश्वरबुद्धि न होगी तो उसे
प्राप्ति नहीं होती। वरन् उसकी अधोगती होने लगती है।
भक्ति दो प्रकार की होती है। निराकाराश्रित गुरुभक्ति और
साकाराश्रित गुरुभक्ति। २९

निराकाराश्रित गुरुभक्ति-

ब्रह्माः गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।

साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

साक्षात् पूर्व ब्रह्म होते हैं।

जब शिष्य को सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम बतलाते हैं तब
ही जाना जाए, २. सभी संदेहों का परिहार कर शिष्य को
उसकी रक्षा करते हैं, और उन्हें ब्रह्मस्थिति प्राप्त करवा
उन्हें विष्णु रूप माना जाए, ३. ब्रह्मज्ञान से सारा संसार
इस बात का प्रयत्न दिला देने पर उन्हें शिव स्वरूप समझा
उस तरह से ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन प्रचीतियों को निराकाराश्रित
भक्ति शिष्य को आने लगती है, और जब ४. जीव शिव का
मिलन होता है, तब श्रीगुरु को निर्विकल्प परब्रह्म हैं ऐसा
अनुभव मिलता है। पर निराकाराश्रित गुरुभक्ति केवल
रूपिणी है।

२. साकाराश्रित गुरुभक्ति

निराकाराश्रित गुरुभक्ति पूर्ण होते ही समाधि धारण
है, और उसके बाद व्युत्थान में जितने भी विकाराभास उ
हैं, उन सबको ब्रह्मरूप करना ही साकाराश्रित भक्ति का व
विकार शिष्य के साथ-साथ गुरु में भी होते हैं। गुरु में
विकार भक्तिरूप हो जाते हैं। पुत्र जन्मकाल में प्रजापतित्व
पालन काल में विष्णुत्व, क्रोधादि काल में रुद्रत्व आदि व
लेकर भक्ति में अंतर न आना ही इस भक्ति का उद्देश्य है।

“तत्तद्विकारोपहित साक्षीचैतन्यव्यतिरिक्त ब्रह्मचैतन्य
समझा जाए” यही इस भक्ति का स्वरूप है।

किन्तु इस भक्ति का विपरीत अर्थ प्रचलन में है। गुरु
की माँग की जाने पर उसे कृष्ण माना जाए, इस धारणा से
में अधर्म फैलता जा रहा है। स्त्रियों के अर्पण की अत्यंत
अश्लील प्रथा दृढमूल होती जा रही है। प्रथम गुरुभक्ति
शिष्य दोनों के लिए दुःसाध्य है, सांसारिक कामना पूर्ति
परमार्थ के नाम पर दूसरा ही कुछ अपनाया जाता है। तांत्रिक
प्रकार तो बड़े ही बीभत्स और विपर्यस्त होते हैं। दूसरी भक्ति
होती है। फिर भी उसके नाम पर भी वासना पूर्ति का प्रयत्न
के कारण बड़ा अनिष्ट हो रहा है।

निराकाराश्रित गुरुभक्ति विशेषतः परमार्थ के वि
साकाराश्रित गुरुभक्ति कुछ व्यवहार को ध्यान में रखकर व
दूसरी भक्ति में जैसे ब्रह्मबुद्धि पाने की जिम्मेदारी शिष्य व
उसी तरह से गुरु भाव की हवा न लगने की जिम्मेदारी गुरु
है। अर्थात् शिष्य यदि साधु में क्रोध भाव देखता है तो उ
जाने। किन्तु साधु स्वयं को रुद्र न समझें। उसके विपरीत इन

और दांभिकता (३५)
 का यत्न करें। कोई भी विकार मन में न लाते हुए शिष्य
 ब्रह्मबुद्धि कब प्राप्त होगी इसका वह प्रयत्न करे। और
 इस प्रयत्न में सहायक बने।
 शिष्याची ने घे सेवा। मानी देवासारिखे ॥
 प्राचा फळे उपदेश। येरा दोष उफराटे ॥
 राम महाराज के इस वचन में गुरु को कैसा बर्ताव करना
 बतलाया है।

शिष्य की समानता व एकरूपता

शिष्य संबंधों में दो महत्त्वपूर्ण पथ्य हैं। व्यवहार में दोनों ही
 तल पर रहते हुए परस्पर सहायता करें और परमार्थ में शिष्य
 वृत्तियों को गुरु को सौंप दें।

वहारो मंत्रसाम्यं भवेद्देशिकशिष्ययोः।

मार्थे गुर्वधीनः इति स्वमतनिर्णयः ॥१६॥

व्यवहार में गुरु-शिष्य को तराजु के पलड़ों के समान रहकर
 विचार-विमर्श और व्यवहारिक दृष्टि से मदद देते हुए एक-
 सहायक बनते रहें। व्यवहार में गुरु-शिष्य के लिए समान
 'अपूर्ण शिष्य को हक सौंपने की उदारता गुरु को बरतनी
 यह व्यवहारिक उत्क्रांति परमार्थ की नींव रूप में होने पर
 मार्थ के शिखर पर चढ़ने में उद्यत होता है। उसके बाद शिष्यों
 सब कुछ गुरु के स्वाधीन करना चाहिए। सभी वृत्तियाँ गुरु
 देने के बाद शिष्य का परमार्थ पूरी तरह से साध्य होता है।
 र्थ से एकरूपता है।

मार्थ से एकरूपता और व्यवहार में संतुलित भाव जब गुरु-
 खलाई देने लगता है, तब दोनों ही अपनी-अपनी जिम्मेदारी
 से सँभाल पाते हैं, तब यही गुरु-शिष्य की जोड़ी कई युगों

(३६) शुद्ध परमार्थ
 तक जग को सुधार का मार्ग दिखलाने में समर्थ होते हैं।
 इस बारे में कृष्ण-अर्जुन का उदाहरण जगद्विख्यात
 दिलाने के कार्य में कृष्ण अर्जुन की सहायता करते हैं और
 संहार करने के कार्य में अर्जुन श्रीकृष्ण की सहायता का
 व्यवहार का संतुलन है। अर्जुन गीता को अपनी सारी वृत्ति
 है, और "करिष्ये वचन तव" कहकर अर्जुन पारमार्थिक
 को धारण करता है। इस गुरु-शिष्य के संवाद के रूप में
 युग तक संसार को मार्गदर्शन करने में सक्षम है। यह
 दिखलाई देता है।

उपसंहार

इस तरह से हमने अनुभूति के मार्ग का लक्ष्य और
 महाराज के साहित्य के संदर्भ में विचार संक्षेप में किया।
 मार्ग के पथिक का मूलभूत रूप देखा। चमत्कारों पर कितना
 रखा जाए, पागल और साधु में अंतर क्या है, ढोंगी साधुओं
 से कैसे बचा जाए, गुरु-शिष्य के व्यावहारिक संबंध कैसे हो
 कैसे हों, इन सब प्रश्नों का संक्षेप में विचार करते हुए
 राजमार्ग, पगडंडियों और गढड़ों को देखा। महाराज अपने
 प्रसंगों में ब्रह्मानुभव प्राप्त करने के हेतु योग और ज्ञान व
 प्रक्रियों को समझाते हैं। अपने-अपने बलबूते के अनुसार
 के राजमार्ग कहलाते हैं। चमत्कारों के पीछे लगना, पागल
 साधु समझना आदि पगडंडियाँ हैं और साधु कहलवाकर
 वाले पाखंडी लुटेरे कहलाते हैं। इन सबके बारे में सोचने पर
 चलता है, कि ब्रह्मनिष्ठों का कोई भी आचरण प्रारब्ध के उ
 के कारण उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। परंतु दूसरे
 अनुकरण करते हैं, तो निश्चित ही साधक और सारा समाज

द्विता है। जिन्हें उपदेश करना है, लोक संग्रह से समाज का आचरण चाहते हैं, उनका आचरण “सतां धर्ममदूषयन्” ही होना चाहता है। अतः आधुनिक साधुओं का आचरण सज्जनों के ही आचरण से प्रेरित होना चाहिए। सच्चे साधकों ने प्रारम्भ से दूषित आचरण की निंदा ही की है उसे उचित माना नहीं है। अतः साधुओं के अनुसार सदाचरण का अनुकरण करना चाहिए और शास्त्र के उपदेश ग्रहण करें। साधक को वैराग्य आदि साधनों से प्रेरित कर उस परमार्थ में प्रवेश करना चाहिए जिससे उनका वैराग्य अंत तक साथ देगा और उसका संरक्षण करता रहेगा। साधु पहावया जाऊ नये कोठे । निजचित्त पेठे शोध घ्यावा ॥१॥ कल्याचा मद ज्याचा गेला नाही । त्याने ठयी ठयी फिरुं नाही ॥२॥ साधु कीजे निज उपासना । तेथे अभिमाना हारविजे ॥३॥ साधु संतसंगी भेटतो आचार्य । आयती जै होय कृष्णवृषा ॥४॥ साधु आचार्य गुरुरूप में मिलने पर उनके उपदेशानुसार बतलाई अनुसार वही राजमार्ग साधक के परमार्थ के मंदिर तक सुखरूप ले जाता है। महाराज के कुल विवेचन का यही

परिशिष्ट

साधुबोध के प्रश्नोत्तर

आचार्य किसे कहते हैं?

मुख्य धर्म और प्रासंगिक धर्म को शास्त्र के बल पर समझता रूप समन्वय भाव से शिष्य के समक्ष रखता है, फिर इन लक्षण निवृत्ति या प्रवृत्ति हों, कोई फर्क नहीं होता।

गुरु किसे कहते हैं?

मार्गदर्शक ब्रह्मज्ञान जो बतलाता है

७. दयालु कौन कहलाता है?

संशय को भेदने वाला।

१०८. गुरुता का अभिमान नष्ट होने का मार्ग कौन-

विषय के सदगुणों को अपने में आत्मसात् करने में प्रयत्न

१०९. सदगुरु की सरल परीक्षा कैसी होती है?

निष्काम को देखकर द्रवित होना और सकाम को

भाग के अनुरूप बर्ताव करना। यह सदगुरु का सरल लक्षण विपरीत लक्षण असदगुरु के होते हैं।

११८. पाखंडी गुरु को कैसे पहचाना जाए?

योग्य रीति से खाने-पीने की व्यवस्था कर, ब्रह्मनिष्ठा करते हुए देह पर ध्यान रखकर, जो शरणागत की ओर ध्यान वह साधु नहीं कहलाता, यह एक अविकल (स्थिर) चित्त

११६. चापलूस गुरु का सरल लक्षण क्या है?

निष्काम की उपेक्षा करते हुए अन्यो की स्वीकृति

११७. चापलूस शिष्य कैसे होते हैं?

सामने गुरु की तारीफ करते हैं, गुरु के लक्षणों को स होकर भी दूसरों पर लादते हैं, और गुरु के समक्ष भी व इसका प्रयोग करते हैं।

१२४. शिष्य गुरु में किन गुणों की खोज करे?

उसे चाहिए वह ज्ञान।

१२५. गुरु शिष्य की परीक्षा किस तरह से ले?

स्वयं दूषित होने का प्रदर्शन करके।

१२९. मैं लोभी हूँ यह भाव शिष्य के मन में उभरने

क्या करना चाहिए?

अपने दुर्गुण और दूसरे किसी के सदगुण दूसरों के सुनाए और फिर उसे दूसरे गुरु की ओर संकेत करें।

१४९. शिष्य की परीक्षा पाने के लिए गुरु अपनी बड़

आपने पहले कहा था, क्या इसमें कुछ समझ-बूझ या वि

र विवेक है- १. मैं कर्मनिष्ठ हूँ इस तरह की बड़ाई यदि गुरु को वैसा आचरण भी करे। २. वसिष्ठ के समान मैं ज्ञाननिष्ठ बड़ाई करने पर और सत्शिष्य का उस पर विश्वास पक्का उसका अज्ञान दूर करना, गुरु का कार्य है। ३. किन्तु मैं हूँ, इस तरह की बड़ाई किसी को भी अपनी शिष्य की नहीं करनी चाहिए। बजाय इसके वह ईश्वर के दासों का दास हीनभाव व्यक्त करे क्योंकि भक्ति अभिमान के विरुद्ध है।

१. पारमार्थिक गुरु में भी दोष दिखलाई देने पर उसका किस प्रकार से किया जाए?

दोष से भी अधिक दोष विषयों में है, यह मानकर चलें।

३. पुराणों में अवतारों के कृत्य बतलाए गए हैं और जीव भी निर्देशित हैं उनका कौन कैसे अनुकरण करे?

वर्तन का आधार श्रुति है तो कोई भी किसी का भी कर सकता है। श्रुति के विपरीत कोई बर्ताव न करें। और सम हो तो मुक्त अवतारों का और साधक के भक्तों का करें।

८. हमेशा किसके प्रति संदेह भाव रखना चाहिए?

य और मन के प्रति।

३. अपनी इंद्रिय और मन पर क्या पहले किसी ने विश्वास

सी भी सयाने ने नहीं।

८. यह कब जाना जाए कि काम क्रोध नष्ट हुए हैं?

द्वेष के प्रति द्वेष भाव शांत हो जाए तब।

९. तब तक क्या किया जाए?

वासना भाव से अशुद्ध काम क्रोध को पराजित करें।

संदर्भ

१. कुंतिवचन-आपदः सन्तु नः शश्वत्॥ महाभारत

२. उपदेशामृत पत्रे भा. १, पत्र २८, लक्ष्मणराव के

पृ.१२८, स्त्री अथवा पुरुष। जंव नाही तीव्र मुमुक्षा। त

संसारविशेषा।विटाबना करू नये॥२७॥ अंतरी परमार्थ धरा

व्यवहार करावा। आवडी भगवंत भजावा। हळू हळू

विराग॥२९॥ आधी प्रपंच करावा नेटका। मग साधावे परम

तीव्र मुमुक्षा नसता देखा। हाचि मार्ग उत्तम॥३१॥

३. साधुबोध प्रश्न २०९, २१० पृ. ९१

४. साधुबोध प्रश्न २१०

५. साधुबोध प्रश्न २१२

६-७. अलौकिक व्याख्यानमाला, पृ.१२७ से १३०

८. चित्तौ देहे च यो रागी, नासौ मुक्तो न भोग

केवळ दुःखात्मा इति स्वमतनिर्णयः॥य१६॥

९. अलौकिक व्याख्यानमाला-ध्यान,

१०. य ७, पृ.२११ से २२०, पत्र ३२-३३

११. य १२, पृ. १६५ से १६९

१३. साधुबोध प्र. २२३

१४. साधुबोध प्र. २२४

१५. साधुबोध प्र. २१४

१६. साधुबोध पृ.१९९

अभंग गाथा १२६२, पृ. २७१

साधुबोध पृ. १९८

साधुबोध पृ. २०४

यष्टी १२, पत्र ३२-३३-३४

यष्टी ७, पत्र २४, पृ. १५७ से १७४

श्रीगुलाबराव महाराजांचे चरित्र आवृत्ती २, री, पृ. २१ से

पत्र १०, पृ. ९७-९८/य. १२, पृ. १६७

संप्रदायसुरतरु अध्याय २०, मीही प्रवर्तलिया परस्त्रीगमनी।

वे मजलागोनी। परी जावू नये सोडोनी। मम मार्गति।।४२५।।

येन्द्रा पद्मिनीपासोनी सोडविले। परी नाथसंप्रदाया नाही

मेयाही विपरीत केले। तरी मज दंडावे सांप्रदायिकी।।४२६।।

कोणी चुकता। तरी माझा दंड साहावा सर्वथा। एवं

वस्था। पुढेही क्रमावी।।४२७।। मजविषयी स्त्रियांनी विश्वास

।। एवं विश्वास न धरावा। परी मार्गही न सोडावा। कारण

झा बरवा। श्रीकृष्णभक्तिवर्धक।।४३१।।

अलौकिक व्याख्यानमाला व ४

य ७, व १२

य १२, पृ. १७०-१७१

य. १२ पृ. १७१

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।।

अलौकिक व्याख्यानमाला, पृ. ४

अलौकिक व्याख्यानमाला प्र. ४, पृ. ६४

पत्र १

ढोंगबाजी के २४ प्रकार

(अध्यापक श्री मुळे को पत्र)

(मराठी का हिंदी अनुवाद...प्रा.डॉ.लीन)

॥ श्री ज्ञानेश्वरमाउली समर्थ ॥

अपने देह को कष्टों से मुक्ति देना ही जीवन्मुक्ति बन गयी है। अतः उपजीविका हेतु ढोंगबाजी करनी पड़ती है, उतनी उन्हें नहीं करनी निम्न वर्ग के हैं और शारीरिक मेहनत करते हैं, जानलेवा प्रसंग नहीं आता, तबतक चोर भी अपकी बात उजागर नहीं करता, किन्तु हम लोगों ने के बन्धनों को चूर चूर कर डाला है।

१) गुरु कहलानेवाला कोई यदि हमसे भारी तो हम अपने चेलों में, तथा उसके विद्रोही चेलों में भिन्ना करना शुरू करही देते हैं।

२) यदि कोई संस्कृत विद्वान हमारे यहाँ लोक-कल्याण का बहाना बनाकर, लोगों की आनेवाली बोली में ही हमें बोलना पड़ता है, ऐसा क उनका संस्कृत भाषण बीच में ही रोक देते हैं।

३) और यदि संत तुकाराम के अभंगवचन लोकभाषा में कीर्तन करें, तो हम उसे यह कहकर कि संस्कृत के बिना वेदों का रहस्य कैसे समझ में फिर संस्कृत-शब्द-रूपावली के दोचार शब्द चुप कराते हैं।

४) हमें भले ही कुछ ज्ञान न हो, फिरभी ब

और दांभिकता (४३)
 कहकर वह बात छुपाई जा सकती है। - मैं आवाहन
 छुता हूँ कि ढोंगबाजी से लोगों को बुद्ध बनाने वाला
 से बढ़कर कोई और नीच वर्ग इस दुनिया में होगा?
) कोई हमसे बढ़कर/अधिक विद्वान होगा तो हम
 रीठपीछे कहते रहते हैं कि, उसने साधनामार्ग से
 वश कर लिया है। वह मुक्ति नहीं पा सकेगा।-
 म ऐसे प्रयास करते हैं कि, उसपर की लोगों की
 जाये।
) किसी ज्ञानमार्गी से मिलनेपर हम उपासनामार्ग
 करते हैं, तथा उपासक के सामने ज्ञान की महत्ता
 हैं।
) मूर्तिपूजा की हम कभी कभी पत्थर की पूजा
 खिल्ली उड़ाते हैं परन्तु पत्थर से भी अनुपयोगी
 जड़ देह की पूजा करवाते हैं।
) शासन को कररूप में धन दे तो जलसमस्या
 ,
 श्या को धन देने से अपनी गर्भवती पत्नी को कष्ट
 भी इच्छा तृप्त कर सकते हैं,
 हत्ते को रोटी खिलवाओ तो वह ईमानदारी से घर की
 करता है,
 फाई कर्मचारी को धन दो तों वह हमारे रोगों के
 हटा देता है,
 रन्तु हमजैसों को दान दो, तो हम उसके बदले में
 नहीं देते। जो आशीष देते हैं उसका फल भी उतना
 मातृभिन्न विधवा के आशीर्वचन का होता है।
) लिखित रूप में वादविवाद करने से हम कतराते

(४४) शुद्ध परमार्थ
 हैं क्योंकि उसमें फंसने का डर है। किन्तु शब्दों
 करने हेतु हम सदैव सिद्ध रहते हैं।
 १०) वेदान्त की आड़ में हम कुछ भी मन
 सकते हैं।- वैयाकरण को अपशब्द से परहेज होता
 को बेसुरे होने से परहेज है, पूर्वमीमांसक को वैगु
 नहीं होता, किन्तु हम वेदान्ती तो प्रारब्ध का न
 काम-क्रोध-मद-मत्सर आदि सभी में रस लेते हैं।
 यथा गानविदां लोके विस्वरो रुचिकृन्नहि
 किन्त्वद्रैतवतां भोगे चित्तावेशः प्रदृश्यते।
 (श्रीमहाराजकृत शास्त्र
 ११) औषधि बनाते समय यदि किसी वैद्य
 गलती से उसमें विष की बूँद पड़ जाये तो उसे दं
 किन्तु आत्मानुसंधान को त्याग कर हम यदि पाप
 करें, तो हमारे अनुयायी इतने समर्थ हैं कि ईश्वर
 दण्डित नहीं कर सकता।
 प्रारब्ध की महत्ता हम वेदान्तियों के ही शा
 पायी जाती है। प्रारब्ध की आड़ में हम मुक्त होव
 कृत्य कर सकते हैं जो देहात्मवादी चार्वाकों के लिए
 होंगे। और तो और, अद्वैतसिद्धि आदि ग्रन्थ प
 तत्वबोध का ककहरा तक हम नहीं जानते।
 १२) मैं यह नहीं कहता कि इसमें वेदान्त क
 है। मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे वेदान्तविरोधी हम
 न गिना जाय। मैं बस इतना ही कहना चाहता
 वेदांती अपने विषय में अनुभवसिद्ध नहीं ब
 गायन या वैसी ही विद्या सीखनेवाले करते हैं।
 जब तक षड्ज (सा) पक्का न हो, शुद्ध

तान न हो, तब तक शंकराभरण राग में कोमल या
की तान लेने की चेष्टा गायक नहीं करते ।-
? बिना वर्णाश्रम कर्म किये, बिना भगवत्कीर्तन
और यहाँ तक कि साधनचतुष्टय की साधना से भी
म वेदान्तग्रंथों का पठन करते हैं, जैसे विद्यालय के
ने हैं ।

करभी, मुझे लगता है कि मैं गलत हूँ । यदि
ष्टय संपन्न होकर हम वेदान्त का आकलन करें तो
क ही वाक्य पढ़कर जीवन्मुक्त हो जायेंगे । फिर
ाल ग्रंथभांडार की रक्षा कौन करेगा? अतः उन
को नमन ।

३) किन्तु हम वेदान्ती उन ग्रंथों का संपूर्णतया
ही करते । आंशिक वेदान्ती तो बहुत से प्राणी होते
भी उन्हीं की पंक्ति में जायेंगे । जैसे - वेदान्त का
का तत्त्व । गधा भी समदृष्टि रखता है क्योंकि धूल
है (धूल तथा गद्दी समान मानकर) कुत्ता भी
न से रत होता है और मख्खरी भी मिष्टान्न तथा
समान भाव से भक्षण करती है । क्या ये प्राणी
वेदान्ती नहीं? - हम केवल जीवन्मुक्त के लक्षण
चिपकाकर आंशिक वेदान्ती बनते हैं - सो हमारी
ही उसी वर्ग में होती है ।

किन्तु हम लोग तो अपने विकारों को छुपाते हैं,
ही करते, और फिर शिष्यों की माताभगिनी के
जब वे विकार प्रकट होते हैं तब प्रारब्ध का नाम
ही का समर्थन करते हैं ।

४) सच्चा वेदान्ती प्रारब्ध - भोग के विषय में उदासीन

होता है । प्रारंभ से ही अपनी गलतियाँ मान लेता
कहता रहता है कि इन विकारों से मुझे मुक्त कर
समान विकारी अन्य पुरुष की वह निन्दा नहीं कर
की भी, तो साथ साथ स्वयं की भी निन्दा करता
के लक्षण बताना तो कठिन है, तथापि गुरु कहलाता
तो इतना बन्धन अनिवार्य है । मैं नहीं मानता कि
वेदान्ती मनुष्य गुरु कहलानेलायक होता है ।

१६) यदि यह सच है कि सत्पुरुष किसी भी
हो सकते हैं तो यह भी उतनाही सच है कि लोक
साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार करेंगे ।

१७) अंदर के विकार जबतक बाहर प्रकट
तबतक हम शुकाचार्य से भी बढ़कर ब्रह्मचारी रहते
बादमें- श्रीकृष्ण के समान सर्वसमर्थ सर्वभोगी ।
१८) हम योगी के सामने कहते हैं कि चमत्कार
होते हैं,

कर्मकांडी के विषय में कहते हैं कि यह तुच्छ
पीछे पड़ा है।

भक्त से कहते हैं कि ब्रह्मसाक्षात्कार अभी बहुत
नीतिमान वेदान्ती से मिलनेपर उसके शब्द
चिकित्सा करते हैं ।

और हमसे बड़े पंडित से मिलनेपर उन्हें क
मोक्ष तो एक ही वाक्य से प्राप्त होता है, फिर इतने
क्या आवश्यकता?

१९) साक्षात् मातापिता का वध करने जित
क्रूरता भी प्रारब्ध के नाम से ढँक जाती है ।

२०) कोई यदि नाम पूछे, तो मुक्त भाव से

और दांभिकता (४७)
 स देह को गुलाबराव कहते हैं -मानों हमारा देह ऐसे
 र है जहाँ ब्रह्म नहीं । यूँ खाते - पीते समय उस देह
 से अलग - पृथक्सत्ता कहाँ होती है ? हे राम ! मैं
 जाता हूँ यह सोचकर, कि इस ढोंग के चंगुल से कोई
 पायेगा?

ढोंग से छूटने के चार मार्ग

जेराश हों, तो शरीर के कष्ट सहन करके वन चला

ह मजबूत है और मन आशावादी, तो मोल-मजदूरी
 वेनयापन करें / जीविका चलाएं /

विका हेतु लोगों की मिन्नत करके, झोली फैलाकर भी
 बचाया जा सकता है । लोग यदि दान न करें, तो
 की दुर्जनता ! परंतु, हमजैसे साधुसमाज से तो
 राज ही अधिक कृपालु है । वह भूखों नहीं मरने देगा।
 ढोंग से छूटने हेतु उपर्युक्त चार उपायों के अलावा
 षवा उपाय मैं तो नहीं जानता ।

मारी ढोंगबाजी के कारण ही समदर्शी संत तुकाराम
 है कि धन की लालसा में डूबे ये असाधु जन न जाने
 बकते हैं । उनके वचन न सुनना ही श्रेयस्कर है ।
 तो यह है हमारा प्रताप । साक्षात् भगवान के अतिरिक्त
 मर्थ होगा जो हमसे बराबरी कर सके ? वहीं यदि
 से हमें देखे, तो उसीमें हमारा भी भला है और
 का भी । अतः उसीसे प्रार्थना करके, यह लेख मैं
 वरतात के चरणों में समर्पित करता हूँ ।

पाचेनि अभिलाखरे । असाधु नेणो काय बके ।
 गोनि तयाचेनि मुखे । श्रवण न करावे गा ॥

(४८)

शुद्ध परमार्थ

पत्र २

वंचक संन्यासी

(श्री गोविंदराव तांबे को पत्र - २०/११/१९)

॥ श्रीमत् सद्गुरु ज्ञानेश्वरमाउली समर्थ

१) आपके मन की उलझन की बात पढ़कर दुःख
 और विस्मय भी । महाभारत में कहा है, 'अनाड़ी
 प्रतिदिन शोक तथा हर्ष बढ़ानेवाले हजारों, कारण
 परन्तु सुज्ञ (समझदार) व्यक्ति का वैसा नहीं ।'

आपने लिखा है, 'मुझे यह विश्वास नहीं है
 बुद्ध नहीं बनाया जा रहा हूँ ।' - परंतु इसका सम
 पास नहीं है, क्योंकि किसीभी महात्मा के पास आ
 तो भी यह संदेह आपके मन में हो सकता है । अ
 व्यावहारिक विचार से उसे दूर करना चाहिये ।

प्रवंचक साधु / प्रवंचक लोग

२) प्रवंचक साधुओं से प्रवंचक सामान्यजन
 अधिक होंगे ।

- व्यवहार में हजारों स्त्रियों के शील के विषय में डं
 जाता है, फिरभी जबतक अपनी पत्नी के विषय
 विश्वास हो, तो क्या कोई उसे त्यागने की सोचत

- नागपुर में वैद्य श्री. गद्रेजी के घर में आग त
 पाँचछह रुग्ण व्यक्ति भस्मसात् हुए । तो क्या अ
 ने वैद्यों के पास जाना छोड़ दिया? या वैद्यों ने क

छोड़ दिया?

को कलंकित करनेवाला व्यक्ति शायद अपने कुल में
या इस भय से क्या किसीने विवाह करना छोड़

टना की वार्ता सुनकर क्या किसीने रेल में बैठना
या ?

तथा भोजन में कई प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु होते हैं।

उस डरसे किसी ने खानापीना त्याग दिया?

ही कहा था कि जिस देश में छोटी सी बात पर

छेद होते हैं, वहाँ भी अपनी स्त्री पर भरोसा रखनेवाले

।

कर ऐसा संदेह बार बार क्यों उठना चाहिये कि

ही मैं धोखा खाऊँगा? और यदि संदेह उठता ही

का समाधान कौन कर सकता है? दुनिया में इस

उत्तर कोई नहीं दे सकता कि दूसरे के समान मैं भी

या तो न खाऊँगा? - फिरभी, इस वहम के कारण

कव्यवहार नहीं छोड़ता। फिर परमार्थ के ही विषय

दासीनता?

सरी बात - जिनके मन में मेरे विषय में संदेह है कि

वे ठगे तो नहीं जायेंगे - तो परांजपेजी के समान

से उन्हें वश कर लेना मैं नहीं चाहता। वैसा करना

वाक्य के उपदेशरूपी जल से भागुरायण का खेत

योगा।

भेदनीति से वश में किये मित्र पर, या द
वशीभूत किये हुए व्यक्ति पर विश्वास करने से परस्
कुछ भी हो सकता है।

सो आपके मन में संदेह वास्तव में हो य
जिनके मन में मेरे द्वारा ठगे जाने की आशंका है
दसबीस वर्ष तक यही देखना उचित रहेगा कि तथ्य
आशा करता हूँ कि यह पढ़कर आप व्यथित नहीं

५) त्रिगुणात्मक माया का कार्य ऐसा है, कि कै
छोड़ कर जो भी हो उसका अंतिम परिणाम विपरीत
है।

६) सांख्य शास्त्र का सिद्धान्त है कि उत्तम
मध्यम ये तीनों गुण परस्परजनक हैं। इस विषय में
की सांख्यकारिका तथा उसपर का भाष्य देखिये
सिद्धान्तों के अनुसार सत्वगुण से भी रजोगुण या
उत्पन्न हो सकते हैं।

सत्वगुण का लक्षण है प्रीति,

रजोगुण का है आसक्ति।

तथा तमोगुण का लक्षण है विषाद। इन गुण

धर्मों में समानता है, तो कुछ गुणों में नितांत विरो

मृगमरीचिका में - दीखने में जलत्व तथा स्पर्श म

होती है, उसी प्रकार मिथ्या माया के भी गुण होते

सत्वगुण की वृद्धि करने के प्रयास में कभी एकही

जाता है और अन्य सात्त्विक धर्म लुप्त भी हो सकते

और दांभिकता (५१)
 सी धर्म से उसकी समानता हो जायेगी, और सात्विक
 उस सजातीय असात्विक गुण का जन्म होता । -
 ही उदाहरण यहाँ पर्याप्त है । - यदि श्रीमद्भगवद्गीता
 ख्यकारिका का साथ साथ अध्ययन करें तो यह
 स्पष्ट होगा ।

प्रीति से कपट -विषाद की निर्मिति
 सांख्यकारिका में कहा है कि सत्वगुण का धर्म है
 यदि अन्य सात्विक धर्म उसके साथ न हों, तो वही
 आत्मक (आसक्तियुक्त) बन जाती है । आयुर्वेद भी
 कि घी जैसे तो उपकारक है परन्तु उसमें शहद मिल
 वह विषैला बन जाता है । उसी प्रकार प्रीति जब
 बन जायेगी तो रजोगुण के प्रभाव से उसमें कपटभाव
 गा । इच्छापूर्ति न होने पर तामस स्वभाव के कारण
 तप्तन्न होगा । अतः किसी भी सात्विक वृत्ति को
 बढ़ाया जाये जिससे वह कैवल्य-पर्यवसायिनी हो ।
 नाथजी श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के तेरहवें
 के भाष्य में कहते हैं,
 जैसे सर्पदंश हुआ है, उसे विष चटाने से आराम होता
 अन्य अवसर पर वही विष प्राणलेवा होता है । उसी
 जस्-तमस् गुणों का लोप करके सत्वगुण बढ़ाया
 वहीं अत्यधिक बढ़ा हुआ सत्वगुण घातक सिद्ध हो
 ।
 केन्तु सात्विक वृत्ति को कैवल्य-अनुभूति तक ही

(५२) शुद्ध परमार्थ
 कैसे बढ़ाया जाये? यह बात प्रसंगविशेष तक सीमित
 अतः केवल शास्त्राध्ययन से इसका समाधान न
 यहाँ गुरु का होना अत्यावश्यक है । शास्त्र प्रमाण
 है, प्रक्रियाप्रवीण नहीं ।

अज्ञान आदि कारणों से, प्रेमी जन के
 आशंका पाकर मनस्ताप होता है- और मैं मान
 किसीभी निःस्पृह महात्मा को ऐसा ताप होता ही
 ९) धर्म, प्रेम तथा गुरु -आज्ञा का पालन इन
 संमिलित सहायता से ही सज्जन पुरुष को सही
 प्राप्ति होती है । इनमें से एक की भी कमी हो तो पि
 ही अंधेरा है ।
 १०) सुशिक्षित व्यक्ति को अपनाने की इच्छा तो
 निष्फल होती है जैसे किसी दरिद्र की राजभोग व
 अतः उस इच्छा से मुँह मोड़ना ही श्रेयस्कर रहेगा ।
 के लिए कोई डिग्रीधारी गुरु ही ठीक रहेंगे ।
 ११) 'आईये', 'पधारिये' जैसे शाब्दिक संमा
 घीचुपड़ी रोटी के बल पर शिष्यसंख्या बढ़ाने की
 नहीं है । हाँ यदि प्रारब्ध में ही इच्छा के विरुद्ध लि
 मेरा बस नहीं ।

कृपया पत्र का उत्तर शीघ्र दीजिये । या
 प्राप्ति की इच्छा है तो कुछ संतोष - सब्र की आवश
 पुनश्च कहता हूँ कि मैं स्वयं किसी को धोखा न

पत्र ३

योगी का आत्मसमर्थन

वेन्दराव तांबे को पत्र - दिनांक २०/६/१९१२)

॥ श्रीज्ञानेश्वरमाउली समर्थ ॥

आपने लिखा है कि श्री. श्रीधरबोवा परांजपे ने देकर लोगों की श्रद्धा जीत ली। यह कोई आश्चर्य नहीं। स्मृतिग्रन्थ ही कहता है कि

आपमभ्यसूयन्ते कलौ लोका न पापिनम् ।

अर्थात् - कलियुग में लोग निष्पाप लोगों की उपेक्षा की व्यक्ति को ही संमान देते हैं।

अपि तात श्रीसंत ज्ञानेश्वर ने ज्ञानेश्वरी में लिखा है कि स्वयं का अपमान करवाने की चेष्टा करते हैं। इसका अर्थ है कि वेदोक्त धर्म का उल्लंघन न करते। आप आचरण करें कि लोग आक्षेप उठाएँ। ऐसा योग सिद्ध होता है। विष्णुपुराण में भी कहा है परां हानिं योगद्धोः कुरुते यतः।

यतो योगी योगं सिद्धिं च विन्दति ॥४२॥

तु वै योगी सतां धर्ममदूषयन्।

आवमन्येरन् गच्छेयुर्नैव संगतिम् ॥४३॥

सम्मानप्राप्ति से योगवृद्धि की हानि होती है। आप सहकर ही योगी योगसिद्ध होता है। अतः आक्षेपाहं अवश्य करें परन्तु धर्म का उल्लंघन किये बिना। कहा है कि सतां धर्मम् अदूषयन्। सर्वविदित है कि संत तुकाराम पर भी आक्षेप उठाये

गये थे। उन्होंने वे सहर्ष सह लिये। परन्तु परांजपे वैसी नहीं है। रूढिबाह्य विवाह करके उन्होंने स्वयं आचरण किया है। फिर अब क्या मान और क्या सोना धूल में पड़ा रहनेपर भी नष्ट नहीं होता और से रखे हुए लोहे को भी जंग खा जाती है। इस तथ्य आकरन कर लीजिये।

निष्पाप व्यक्ति के अपमानित होने को अमृतपानयोग कहा है।

नये योगाभ्यासी

४) बहुत से लोग पहले मुझसे संपर्क करते हैं। कामनाओं का त्याग किये, विकारों तथा भौतिकता छोड़े मुझसे योग के अध्यापन की अपेक्षा करते आपने सुझाये हुए ये नये योगाभ्यासी भी इसी श्रेणी यदि वैसा ही है तो उन्हें मैं दूर से ही विदा करता हूँ।

५) आपका शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य का परस्पर में सच्चा प्रेमभाव है, सो अलगवक नहीं उठता, परन्तु उन लोगों से दूरी बरतने का कारण का चमत्कारों के विषय में प्रश्न पूछना। मुझे उन लेनादेना ही क्या जिनकी कामना नष्ट नहीं होती।

६) फिर, वे लोग भले ही दुनियाभर की कामना पूर्ति करते रहे जिन्हें सद्गुरु बनने का दायित्व नि मैं तो बस निष्पाप, निष्काम तथा स्नेही जीव हूँ और धन्यता मानता हूँ।

पत्र ४

ठगबाजी तथा नीति

(विडुलराव केकरे को पत्र)

माधान

१७/५/१९१३

॥ श्रीमत्सद्गुरुज्ञानेश्वरमाउली ॥

निष्ठा की कमी

सामान्यजन में परमार्थ के विषय में निष्ठा की कमी संशयात्मा विद्वान की अपेक्षा भोला भक्त ही भवसागर है। धर्मसंस्थापक भी संशयात्मा के समक्ष हतबल है।

अंकराचार्यजी के समक्ष सभी अर्धविद्वान् ही थे। मैं तुल्यबल प्रतिवादी मिला ही नहीं। तथापि जो मिले स्वयं के संप्रदाय को ही धर्म मानने में पूरा विश्वास था आज वैसी स्थिति नहीं है। भौतिक सुख को ही माननेवाले लोगों की किसी भी धर्म पर श्रद्धा नहीं है।

या तो पूरी तरह शास्त्रोक्त आचरण करनेवाला है, या

शास्त्रज्ञान के बिना भी, किसी के वचन में श्रद्धा मात्रा तर जाता है।

किन्तु आधा अधूरा शास्त्र पढ़कर बाद में उसे माननेवाले की गिनती धार्मिकों में नहीं होती। गीताजी के

सत्रहवें अध्याय के भाष्य में स्वयं आचार्यजी ने यह

४) परन्तु हमारी स्थिति बड़ी विचित्र है। वेदान्त परीक्षाहेतु पढ़ते हैं। फिर डिग्रीधारी तो बनते साधनचतुष्टयसंपन्न नहीं बनते। हमारी पढ़ाई ऐसी ग्रंथ के आधे भाग में विश्वास करते हैं, आधे में अकिन्तु इससे हम उस साक्षात्कार से वंचित रह निदिध्यासनजन्य वृत्ति से होता है। हमारा मनन सा नहीं रहता और बाधक तर्कों में वृद्धि होती रहती है।

ठगने की परंपरा

५) निष्ठा के क्षीण होने के कई कारण होते हैं साधु ने फलाने को ठग लिया - सो साधु कहलाने मुझे भी धोखा दे सकता है - ऐसी भावना होती है आशंका निर्मूल है। यदि मानकर चले की वह धोखा देगा, तो यही मानना पड़ेगा कि दुनिया में सभी ठग ही हैं।

सर्व शंकाभिराक्रान्तमन्नं पानं च भूतले

प्रवृत्ति : कुत्र कर्तव्या जीवितव्यं कथं नु व

अर्थात् -अन्न, जल भी यदि संशयास्पद हो जाये काम के लिए प्रवृत्त हों ? जियें भी तो कैसे ?

और फिर ऐसा मान लें कि कोई प्रवंचक हो

तो पूरी दुनिया को सज्जन मानना पड़ेगा। दोन सदोष हैं, परन्तु मुझे लगता है कि इस दूसरे पक्ष में

अवसर है ।

स्तुतः वासना तथा विषयवस्तु ही ठगने की सामग्री
क इनका सांनिध्य है, तबतक ठगना तथा ठगे जाना
सकता रहेगा ।

तन्होंने किसीका कुछ नहीं बिगाड़ा, ऐसे प्राणियों
संकेत कर लेते हैं और सिद्धान्त रखते हैं कि ईश्वर
मनुष्यप्राणी को सर्वोच्च बनाया है, अतः सारे प्राणी
उसके भोग्य हैं । - परन्तु हम यह भूल जाते हैं कि उन
को भी तो मनुष्य की उच्चता प्रतीत होनी चाहिए
मनुष्य को होती है ।

पारा सच भी वैसा ही होता है जैसे चोरों की टोलियाँ
कसमें - वादे निभाती हैं । ऐसी स्थिति में यदि
ई हमें ठग लें तो कौनसी आश्चर्य की बात है ? यदि
तहीं बनना है तो विषयासक्ति त्यागनी पड़ेगी ।

वर्कण्डेय पुराण में मदालसा की कथा है । अपने
धीन पुत्र अलर्क का राज्य उसने दूसरे राजा के
नवाया और उसे निरासक्त बनाया । जो सच्चा
है उसे कितनी भी ठोकरें सहनी पड़ें, उनसे उसकी
गण नहीं होती अपि तु अदृष्ट ही नष्ट होता है । परन्तु
स्वांग रचानेवाले की निष्ठा ऐसी स्थिति में चूरचूर
है ।

निष्ठा के डगमगाने का दूसरा कारण है यह भावना
न्य नीति के विरोध में नहीं जाना चाहिये । मैं भी

इससे सहमत हूँ । परन्तु सामान्य नीति को ही अतीत
मानने का अतिविश्वास मुझे मान्य नहीं है ।

पाश्चात्य नीतिशास्त्र तथा ईश्वर

१०) पाश्चात्य नीतिशास्त्र की सोचें, तो दिखाई
अभीतक नीति की उनकी परिभाषा ही निश्चित
थियोलोजिस्ट लोगों की प्रायः यही धारणा है कि
साक्षात् नीति का पुतला है ।

पाश्चात्य शास्त्र का पूरा आलोडन - विलोडन
पर चार ही संकल्पनाएँ उभरती हैं - १) अँथॉरिटी २)
३) युटिलिटी तथा ४) इक्वोल्यूशन । इनमें से कि
आधार से ईश्वर को नीति का पुतला सिद्ध करना
क्योंकि

१) यदि वह अँथॉरिटी के अनुसार वर्तन करनेवाला
अनवस्था प्रसंग ही होगा ।

२) इंट्यूशन के अनुसार मानना पड़ेगा कि ईश्वर
तथा असत् - दोनों प्रकार का कॉन्शस है । यदि वे
का याने नीति का ही कॉन्शस होता तो शैतान का
करने की प्रवृत्ति ईश्वर को होती ही नहीं ।

३) युटिलिटी की सोचें तो मानना पड़ेगा कि जो
दरिद्री सज्जन दुनिया में हैं उनकी ईश्वर के न्याय
दखल ही नहीं ली जाती ।

४) इक्वोल्यूशन की कल्पना तो ईश्वर की सत्ता को
ही नहीं होने देती । केवल यही अनुमान उससे सं

होते होते अन्तिम क्षण में शायद ईश्वर अस्तित्व में
। अतः वेस्टर्न एथिक्स के बल पर नीति -अनीति
य संतोषजनक रीति से नहीं होता ।

प्रब अपना शास्त्र लें तो नीति के बहुत प्रकार हैं । उन
विचार करने की आवश्यकता नहीं हैं ।

धर्मनीति तथा धर्मनीति ये दो ही प्रकार देखें । उसमें
की स्थिति वहीं है जिसका विवरण ऊपर किया

दूसरी धर्मनीति । राजयोग के यम नामक अंग में
समावेश है । फिरभी अनाकलनीय है कि दुनिया मे
का पुतला हो भी सकता है या नहीं ।

यम का पहला घटक है अहिंसा । योगशास्त्र के
जहाँ अहिंसावान पुरुष होगा वहाँ शेर - गाय, साँप
आदियों का परस्पर वैर नष्ट होना चाहिये । परमेश्वर
के है । अतः वह यदि अहिंसावान है तो उसकी सृष्टि
शेर या साँप-नेवला जैसे स्वाभाविक वैर वाले प्राणी
के नहीं होने चाहिये ।

यदि कहें कि वे अपने अदृष्ट के कारण उत्पन्न होते हैं,
त नहीं बनती । अहिंसावान पुरुष के सामने अदृष्टोत्पन्न
का भी परस्पर -वैर नष्ट होता है । ऐसा नहीं है कि उसवे
वैर गाय - शेरों के झुंड ही आते हैं

आत्पर्य यही है कि नीति का पालन साधकों के लिए

ही कहा गया है । वह अष्टांग योग का प्रथम
सत्ताभेद हेतु उसका परमेश्वर से जो संबंध है वह
के लिए ही उपकारक है । यही कारण है कि श्रीकृष्ण
की रासक्रीडा भी वन्दनीय भावना से ही देखी जा

अभ्यास कैसे करें ?

१४) इस नीति का अभ्यास साधक के द्वारा स
होना चाहिए । किन्तु आजकल लोगों की प्रवृत्ति कु
ही हो गयी है । वे कामवृत्ति की ही निन्दा क
क्रोधवृत्ति की उतनी निन्दा नहीं होती जिसको
कामविकार से भी अधिक निन्द्य कहा है । न को
व्यापार में झूठ बोलनेवाले की निन्दा करता है न
करनेवालों की । आप ऐसा मत समझना कि मैं का
अच्छी मानता हूँ, परंतु शास्त्रों के अनुसार क्रो
कामवृत्ति से भी अधिक हेय है । इसीलिए,

१५) नीति का अभ्यास साकल्य से किया ज
लाभदायक है, इकंग (एक ही वृत्ति को लेकर)
उपयोगी तो होता ही नहीं, अपि तु एक वृत्ति से
किया जाय तो दूसरी ओर अनीति प्रबल हो जाते
अत एव, किसी एक ही वृत्ति के विचार से यदि हम
अनीतिमय आचरण को नाम रखते हैं, तो आत्मप
करना आवश्यक है । इतनाही लिखकर
श्रीज्ञानेश्वरजी के चरणों में समर्पित करता हूँ ।
